जैनॉलॉजी–परिचय (५)

जैनधर्म की मूलभूत जानकारी

अट्ठपाहुड–सार : प्रश्नसंच

प्राकृत–व्याकरण

संपादन
डॉ. नलिनी जोशी

सन्मति–तीर्थ प्रकाशन, पुणे ४
जून २०१३

जैनॉलॉजी–परिचय (५)

जैनधर्म की मूलभूत जानकारी

अट्ठपाहुड–सार : प्रश्नसंच

प्राकृत व्याकरण

सहसंपादन

डॉ. कौमुदी बलदोटा डॉ. अनीता बोथरा

संपादन

डॉ. नलिनी जोशी

सन्मति–तीर्थ प्रकाशन, पुणे ४

जून २०१३

* जैनॉलॉजी–परिचय (५)

* लेखन और संपादन
डॉ. नलिनी जोशी
मानद निदेशक, सन्मति–तीर्थ

* सहसंपादन
डॉ.अनीता बोथरा
डॉ. कौमुदी बलदोटा

* प्रकाशक
सन्मति–तीर्थ
(जैनविद्या अध्यापन एवं संशोधन संस्था)
८४४, शिवाजीनगर, बी.एम्.सी.सी.रोड
फिरोदिया होस्टेल, पुणे – ४११००४
फोन नं. – (०२०) २५६७१०८८

* सर्वाधिकार सुरक्षित
* प्रथम आवृत्ति – जून २०१३
* प्रकाशन – जून २०१३
* मूल्य – ६० रु.
* अक्षर संयोजन – श्री. अजय जोशी
* मुद्रक : कल्याणी कॉर्पोरेशन
१४६४, सदाशिव पेठ
पुणे – ४११०३०
फोन नं. – (०२०) २४४७१४०५

सम्पादकीय

'जैनॉलॉजी परिचय' के इस धारा की पाँचवी किताब, विद्यार्थियों के सामने रखते हुए, हम सार्थ गौरव की अनुभूति कर रहे हैं ।

हर साल की किताब में कुछ न कुछ अलग देने का प्रयास हम करते हैं । परिचय के प्रस्तुत भाग में गुर्जरनरेश जैनधर्मी राजा कुमारपाल और उसके प्रेरक आचार्य हेमचन्द्र इनकी रोचक कहानी धारावाही तरीके से देने का प्रयास किया है । जैनविद्या की एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है - जैनकला । भारतीय कलासंवर्धन में जैनों का योगदान सुचारु औसंक्षिप्त रूप में अंकित किया है ।

यद्यपि जैनधर्म का प्रारम्भिक साहित्य, प्राकृत भाषा में निबद्ध है तथापि जैन आचार्यों द्वारा लिखित, संस्कृत ग्रन्थों की मात्रा भी प्रचुर है । जैन तत्त्वज्ञान की दृष्टि से, तत्त्वार्थसूत्र का महत्त्व अनन्य साधारण होने के कारण, प्रस्तुत किताब में उसकी पृष्ठभूमि दी है । सद्य:कालीन स्थिति में जैन युवक-युवतियों का झुकाव धार्मिकता और आध्यात्मिकता से ज्यादा, वैश्विक नीतिमूल्यों की ओर आकर्षित हो रहा है । जैन आचार्य सोमदेव द्वारा लिखित संस्कृत सूत्र इन्हीं नीतिमूल्यों का उत्कृष्ट दिग्दर्शन करते हैं ।

पिछले चार साल की किताब में, दिया हुआ प्राकृत व्याकरण ध्यान में रखकर, थोडी अधिक जानकारी इस किताब में दी है । किताब के अन्तिम भाग में प्राकृत भाषा में निबद्ध तीन पाठ हिन्दी अर्थसहित दिये हैं । उनमें से दो राचक कथाएँ हैं और तीसरा है भ. महावीर का संक्षिप्त चरित्र ।

हम आशा करते हैं कि शिक्षक और विद्यार्थी दोनों, किताब का मन:पूर्वक स्वागत करे । सन्मति-तीर्थ अध्यक्ष मा.श्री. अभयजी फिरोदिया के प्रोत्साहन के लिए हम उनके शुक्रगुजार है ।

डॉ. नलिनी जोशी
मानद सचिव , सन्मति-तीर्थ

****

* शिक्षक एवं विद्यार्थियों के लिए सूचनाएँ *

लेखी परीक्षा ४० गुणों की होगी । गुण-विभाजन सामान्यत: इस प्रकार का है -

१) आचार्य हेमचन्द्र और राजा कुमारपाल	:	लगभग ५ गुण
२) जैनों का भारतीय कलासंवर्धन में योगदान	:	लगभग ५ गुण
३) तत्त्वार्थसूत्र की पृष्ठभूमि	:	लगभग ५ गुण
४) सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृत	:	लगभग१० गुण
५) प्राकृत भाषा का व्याकरण	:	लगभग ५ गुण
६) प्राकृत पाठ	:	लगभग १० गुण

* प्रत्येक पाठ के अन्त में दिये हुए स्वाध्याय, विद्यार्थी अपनी-अपनी कॉपी में लिखें ।

* स्वाध्याय के अतिरिक्त कुछ अनपेक्षित वस्तुनिष्ठ प्रश्न भी पूछे जा सकते हैं, जैसे कि - जोड लगाइए, रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए आदि ।

****

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.क्र.
१.	प्रार्थना	०७
	जैनॉलॉजी–सामान्य–जानकारी–विभाग	
२.	आचार्य हेमचन्द्र और राजा कुमारपाल	०९
३.	जैनों का भारतीय कलासंवर्धन में योगदान	११
४.	तत्त्वार्थसूत्र की पृष्ठभूमि	१५
५.	सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृत	२२
	प्राकृत–व्याकरण–विभाग	
६.	प्राकृत भाषा की शब्दसंपत्ति	३२
७.	प्राकृत में स्वरपरिवर्तन तथा व्यंजनपरिवर्तन	३६
८.	नाम–विभक्ति के प्रत्यय	४३
९.	क्रियापद के प्रत्यय	४५
१०.	प्राकृत में अव्यय	४९
	प्राकृत–गद्य–विभाग	
११.	छत्त–परिक्खा	५३
१२.	मूसग–वग्घो	५५
१३.	भगवं महावीरो	५७

****

पाठ १
प्रार्थना

१. नमो अरिहंताणं ।
नमो सिद्धाणं ।
नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं ।
नमो लोए सव्व-साहूणं ।
एसो पंच-नमोक्कारो सव्व-पाव-प्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ।।

२. मंगलं भगवान् वीरो , मंगलं गौतमः प्रभुः ।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या , जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ।।

३. मंगलं भगवान् वीरो , मंगलं गौतमः प्रभुः ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो , जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ।।

४. सर्व-मंगल-मांगल्यं , सर्व कल्याण-कारणम् ।
प्रधानं सर्व-धर्माणां , जैनं जयतु शासनम् ।।

५. या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

६. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः , गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म , तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

७. खामेमि सव्वे जीवा , सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ति मे सव्व-भूएसु , वेरं मज्झ ण केणई ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

****

जैनॉलॉजी–सामान्य–जानकारी–विभाग

पाठ २

आचार्य हेमचन्द्र और राजा कुमारपाल

ईसवी की दसवीं सदी से गुर्जर (गुजरात) प्रदेश में श्वेताम्बर साधुओं का 'चन्द्र' गच्छ नाम से प्रसिद्ध विहार करनेवाला गच्छ था । ग्यारहवीं सदी में चन्द्र गच्छ के देवचन्द्र नामक आचार्य 'धंधुका' नाम के गाँव में पहुँचे । उनका प्रवचन सुनने के लिए 'मोढा' वैश्य परिवार के 'चच्च' और 'चाहिनी' ये पति-पत्नी अपने छोटे बालक के साथ वहाँ पहुँचे । बालक 'चंगदेव' बहुत तेजस्वी एवं बुद्धिमान था । आचार्य देवचन्द्र और चंगदेव दोनों के मन में एकदूसरे के प्रति, धर्मसम्बन्धित अनुराग उत्पन्न हुआ । देवचन्द्र ने मन ही मन जाना की यह तेजस्वी बालक आगे जाकर, जैनधर्म का खूब प्रचार-प्रसार करेगा । चंगदेव के मामाजी के माध्यम से आ. देवचन्द्र ने 'चच्च और चाहिनी' से 'चंगदेव' को धर्मसमर्पित करने की प्रार्थना की । उस समय 'चंगदेव' की आयु नौ साल की थी (इ.स.१०९८) ।

गच्छप्रवेश के बाद चंगदेव का नाम 'सोमचन्द्र' रखा । उसी समय से बालक का अध्ययन शुरु हुआ । उसकी स्मरणशक्ति और धारणाशक्ति बहुतही तीव्र थी । समग्र जैन और ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन उन्होंने बहुतही अल्प अवधि में कर लिया । सर्व शास्त्रों में और ध्यानयोग में भी प्राविण्य प्राप्त किया । उम्र के सोलहवें साल में ही सोमचन्द्र समग्र विद्या एवं शास्त्र में पारंगत हुए । इ.स.११०६ में उनको आचार्यपद पर अभिषिक्त किया । तभी से वे 'आचार्य हेमचन्द्र' अथवा 'हेमचन्द्राचार्य' नाम से विख्यात हुए । स्वर्ण जैसी तेजस्विता और चन्द्र जैसी शीतलता होने के कारण उनका नाम बहुतही अर्थपूर्ण था ।

आचार्यपद की प्राप्ति के बाद वे मुख्यत: गुर्जर प्रान्त में जैनधर्म के उद्धार और प्रचारकार्य में कार्यरत हुए । उन्होंने सोचा, 'जब तक कोई राजा महाराजा इस धर्म का नायक न हो, तब तक यह संकल्प सिद्ध होना मुश्किल है ।' विविध देशों में विहार करते हुए, प्रतिबोध देते हुए गुर्जर राज्य का प्रुमख नगर अणहिल्लपुर पाटण में उन्होंने प्रवेश किया ।

उस समय गुर्जर देश का आधिपत्य चौलुक्य वंश के राजा 'सिद्धराज जयसिंह' कर रहे थे । हेमचन्द्र के विद्वत्ता की ख्याति सुनकर, सिद्धराज उनके दर्शन के लिए उत्कंठित हुए । राजा पर हेमचन्द्र की विद्वत्ता और चारित्र का बहुत प्रभाव पडा । राजा ने हेमचन्द्र से कहा, 'आप कृपा कर, निरन्तर यहाँ आया करें और धर्मोपदेश द्वारा हमें सन्मार्ग बताया करें ।' राजसभा में हेमचन्द्र का निरन्तर आगमन होने लगा । तत्त्वचर्चा में वे माहीर थे । देशदेशान्तरों से आये हुए विद्वानों की सभा में उनका वादविवाद-पटुत्व सिद्ध हुआ । हेमचन्द्र के प्रभाव से सिद्धराज के मन में जैनधर्म के विषय में आदरभाव निर्माण हुआ । सिद्धराज का कुलपरम्परागत धर्म 'वैष्णव' था । यद्यपि उन्होंने कुलधर्म का त्याग नहीं किया था तथापि जैनधर्म के प्रति विशेष भक्तिभाव रहता था ।

'आचार्य हेमचन्द्र' और 'सिद्धराज जयसिंह' का साहचर्य बहुत साल तक रहा । इस न्यायी और विद्याप्रेमी राजा ने ४९ वर्ष राज्य किया । ईसवी सन ११४२ में महाराज सिद्धसेन का देहान्त हुआ । हेमचन्द्र ने 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' नाम का अपना महान 'व्याकरण-ग्रन्थ' महाराज सिद्धराज को समर्पित किया था ।

सिद्धराज के मृत्यु के उपरान्त लगभग दस-पन्द्रह साल आ.हेमचन्द्र ने अन्य प्रदेशों में विहार किया । उनके अद्भुत प्रभाव से साधुसंघ और श्रावकसंघ को वृद्धि हुई । बीच-बीच के वर्षावासों में हेमचन्द्र ने अपनी अपूर्व ज्ञानशक्ति से अपार ग्रन्थराशि का निर्माण किया ।

सिद्धराज के बाद गुर्जर भूमि के अधिपति महाराज कुमारपाल हुए । उन्होंने दस-बारह साल राज्य की सीमा बढाने के प्रयास किये । दिग्विजय प्राप्त करके उन्होंने अनेक राजाओं को वश किया । अतुलनीय पराक्रम से पूरा राज्य निष्कण्टक किया । अपनी सीमा के अन्तर्गत शान्ति का साम्राज्य फैलाने की कोशिश की । कालाकौशल की वृद्धि होने लगी ।

कुमारपाल की शासनव्यवस्था पर हेमचन्द्र बहुतही प्रसन्न हुए । उन्होंने पुन: पाटण नगर में प्रवेश किया । श्रीसंघ ने बडी धामधूम से हेमचन्द्राचार्य का नगर-प्रवेश-समारोह करवाया । इतिहास कहता है कि, कुमारपाल महाराज को आ.हेमचन्द्र ने दो बार प्राणान्तिक संकट से बचाया था । अत: नगरप्रवेश के उपरान्त कुमारपाल हेमचन्द्राचार्य के एकनिष्ठ भक्त बनें ।

हेमचन्द्र उत्कृष्ट योगी, परमदयालु और नि:स्पृह थे । यद्यपि राजा उनका भक्त था तथापि उनको धन-मान-पूजासमकमान आदि की जरुरत नहीं थी । आ. हेमचन्द्र की शिक्षा के अनुसार, राजा कुमारपाल ने अपने राज्य में प्राणिहिंसा के ऊपर रोक लगाया । पूर्ण अहिंसा का प्रचार किया । द्यूत-मांस-मद्य-शिकार आदि दुर्व्यसनों का बहिष्कार करवाया । कुमारपाल ने ईसवी सन ११६० में शुद्ध श्रद्धानपूर्वक जैनधर्म की गृहस्थदीक्षा का स्वीकार किया ।

आ.हेमचन्द्र द्वारा रचित ग्रन्थसम्पत्ति देखकर हम आश्‍चर्यचकित होते हैं । व्याकरण-न्याय-काव्य - कोष-अलंकार-छन्द-नीति-स्तोत्र आदि सब विषयों पर उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखें । तत्कालीन सर्व धर्म के विद्वानों ने उन्हें 'कलिकालसर्वज्ञ' यह उपाधि समर्पित की । उन्होंने 'कुमारपालचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की थी । उसमें यह खूबी थी कि एक प्रकार से पढें तो वह कुमारपाल राजा की जीवनी थी । दूसरे प्रकार से पढें तो प्राकृत व्याकरण के नियमों के बहुत सारे उदाहरण उसमें निहित थे । 'देशीनाममाला' नाम का उनका ग्रन्थ भी अपूर्व है क्योंकि समकालीन प्रादेशिक बोलीभाषाओं के शब्दों की वह डिक्शनरी थी ।

आ. हेमचन्द्र का शिष्यसमूह बहुत बडा और प्रभावशाली था । ईसवी सन ११७३ में उन्होंने निर्मल समाधिसहित प्राणत्याग किया ।

कुमारपाल के शासनकाल में 'अणहिल्लपुर-पाटण', भारत के सर्वोत्कृष्ट नगरों में से एक था । व्यापार तथा कलाकौशल के कारण वह नगर समृद्धि के शिखर पर था । एक दन्तकथा के अनुसार, उस समय उस नगर में १८०० करोडपति रहते थे । कुमारपाल प्रजा का पालन पुत्रवत् करते थे । प्रजा की स्थिति जानने के लिए गुप्त वेश में शहर भ्रमण करते थे । प्रजा के ऊपर के 'कर' और 'दण्ड' बहुत कम कर दिये थे ।

राजा कुमारपाल बडे सत्यनिष्ठ थे । जिनेन्द्र भगवान की नित्य पूजा करते थे । अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण उन्होंने कभी नहीं किया । दीनदु:खी और याचकों को अगणित द्रव्यदान करते थे । गरीब जनता की निर्वाह के लिए हर साल लाखों रुपये राज्य के खजाने में से दिये जाते थे । उन्होंने जैन शास्त्रों का उद्धार कराया । अनेक पुस्तकभण्डार स्थापन किये । सैंकडो पुरातन जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया ।

तारंगा आदि तीर्थक्षेत्रों पर शिल्पकला के अद्वितीय नमूने और अनुपमेय मन्दिर बनाये । कुमारपाल ने जैनधर्म का उत्कृष्टता से पालन किया और सारे गुजरात को एक 'आदर्श जैन राज्य' बनाया ।

अपने गुरु हेमचन्द्र की मृत्यु के छह महिने बाद ईसवी सन ११७४ में, ८० वर्ष की आयु भोगकर, महाराज कुमारपाल स्वर्गवासी हुए ।

सच्चे अर्थ में, हेमचन्द्र-कुमारपाल की जोडी 'महर्षि-राजर्षि' के रूप में इतिहास में अमर रहेगी ।

****

स्वाध्याय :

प्रश्न : राजा कुमारपाल की विशेषताएँ लगभग पन्द्रह पंक्तियों में लिखिए ।

****

पाठ ३
जैनों का भारतीय कलासंवर्धन में योगदान

जैन परम्परा ने भारतीय साहित्य एवं तत्त्वज्ञान को जिस प्रकार योगदान दिया, उसी प्रकार भारतीय कलासंवर्धन में भी अपनी खास छाप छोडी है । मनुष्यप्राणि जिज्ञासा के कारण, ज्ञान के द्वारा विज्ञान और तत्त्वज्ञान का विकास करता है । मनुष्य में अच्छे और बुरे का विवेक होने के कारण, धर्म, नीति और सदाचार के आदर्श प्रस्थापित करता है । मनुष्य का तीसरा विशेष गुण है – सौंदर्य की उपासना । पोषण और रक्षण के लिए मनुष्य जिन पदार्थों का ग्रहण करता है उन्हें भी अधिकाधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है । मानवीय सभ्यता का विकास सौंदर्य की उपासना पर आधारित है । गृहनिर्माण, मूर्तिनिर्माण, चित्रनिर्माण, संगीत और काव्य, ये पाँच कलाएँ मानवी जीवन को अधिकाधिक पूर्णता की ओर ले जाती हैं ।

जैनधर्म के बारे में सामान्यत: कहा जाता है कि इस धर्म में निवृत्ति–संन्यास एवं विरक्ति को प्राधान्य है । जैनधर्म में निषेधात्मक वृत्तियों पर ही भार दिया है । किन्तु यह दोषारोपण जैनधर्म की अपूर्ण जानकारी का परिणाम है । यद्यपि मुनिधर्म में वीतरागता की प्रधानता है तथापि गृहस्थधर्म में कलात्मक प्रवृत्तियों को यथोचित स्थान दिया गया है ।

आदिनाथ ऋषभदेव के चरित्र में हमने पढा ही हैं कि उन्होंने मानवी उन्नति के लिए असि–मसि–कृषि–विद्या–वाणिज्य एवं शिल्प का विशेष प्रणयन किया । समवायांग और औपपातिक, दोनों प्राचीन ग्रन्थों में ७२ कलाओं की नामावली पायी जाती है । कलाओं की शिक्षा देनेवाले कलाचार्य और शिल्पाचार्यों का भी उल्लेख मिलता है ।

जैन स्तूप :

वास्तुकला में जैनों का योगदान प्रथमत: 'मथुरा के स्तूप' के द्वारा स्पष्ट होता है । स्तूप के भग्न अंशों से भी इसका जैनत्व स्पष्ट होता है । इसका काल ईसा पूर्व २०० बताया जाता है । मुनियों की ध्यानधारणा के लिए गुफाएँ बनायी जाती थी । ऐसी गुफाओं में से सबसे प्राचीन और प्रसिद्ध जैन गुफाएँ बराबर और नागार्जुनी पहाडियों पर स्थित हैं । यह स्थान पटना–गया लोहमार्ग से नजदीक है । इसका काल ईसा पूर्व तीसरी शती माना जाता है ।

जैन गुफाएँ :

उडिसा राज्य के 'कटक'के समीपवर्ती उदयगिरि व खण्डगिरि नामक पर्वतों की गुफाएँ ईसवी पूर्व द्वितीय शती की सिद्ध होती है । उदयगिरि की हाथीगुम्फा में कलिंग सम्राट खारवेल का सुविस्तृत शिलालेख प्राकृत भाषा में लिखा हुआ है । इस शिलालेख से यह भी स्पष्ट होता है कि ईसवी पूर्व पाचवी–चौथी शती में भी जैन मूर्तियाँ निर्माण होती थी और उनकी पूजा–प्रतिष्ठा भी होती थी । दक्षिण भारत के बादामी की जैन गुफा उल्लेखनीय है । बादामी तालुका में, ऐहोल नामक ग्राम के समीप जैन गुफाएँ हैं, जिनमें जैन मूर्तियाँ विद्यमान है । गुफानिर्माण की कला एलोरा में चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुई । यहाँ बौद्ध–हिन्दु और जैन, तीनों सम्प्रदायों के शैलमन्दिर बने हुए हैं । यहाँ पाँच जैन गुफाएँ हैं । मनमाड रेल्वेजंक्शन के समीप 'अंकाई–तंकाई' नामक गुफासमूह है । तीन हजार फूट ऊँचे पहाडियों में सात गुफाएँ हैं ।

वैसे तो, पूरे भारतभर में और भी कई स्थानों पर जैन गुफाएँ पायी जाती है ।

जैन मन्दिर :

भारतीय वास्तुकला का इतिहास पहले स्तूपनिर्माण में, फिर गुफा–चैत्य और विहारों में और तत्पश्चात् मन्दिरों के निर्माण में पाया जाता है । इसीका अनुसरण करके प्राय: जैन मन्दिरों का भी निर्माण हुआ । जैन मन्दिरों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण ग्यारहवीं शती के पश्चात् ही पाये जाते हैं । वर्तमान में सबसे प्राचीन जैन मन्दिर जिसकी सिर्फ रूपरेखा सुरक्षित है, वह है – दक्षिण भारत में बादामी के समीप ऐहोल का 'मेघुटी' नामक जैन मन्दिर ।

मन्दिरनिर्माण में तीन शैलियाँ पायी जाती हैं – नागर, द्राविड और वेसर । सामान्यत: नागरशैली उत्तर–भारत में पायी जाती है । द्राविड शैली दक्षिण–भारत में तथा वेसर शैली मध्य–भारत में पायी जाती है । हलेबीड का पार्श्वनाथ मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है । पार्श्वनाथ की चौदह फीट विशाल मूर्ति सप्नफणि नाग से युक्त है । हलेबीड मन्दिर के छत की चित्रकारी, पूरे भारत में सर्वोत्कृष्ट है । मध्य–भारत के देवगढ और खजुराहो के जैन मन्दिर विशेष लक्षणीय है । खजुराहो में जैन मन्दिरों की संख्या तीस से ऊपर हैं । मध्यप्रदेश के 'मुक्तागिरि' और 'सोनागिरि' के मन्दिर पहाडी घाटी के समतल भाग में स्थित है । नजदीक ही सात फीट ऊँचा जलप्रपात है । जोधपुर के समीप के ओसिया के, प्राचीन जैन और हिन्दु मन्दिर सुप्रसिद्ध है । मारवाड के सादडी ग्राम के समीप भी अनेक हिन्दु और जैन मन्दिर है ।

राजपुताने के गोडवाड जिले में 'राणकपुर' का मन्दिर प्रसिद्ध है । यह विशाल चतुर्मुखी मन्दिर ४०,००० वर्गफीट भूमिपर बना हुआ है । इसमें २९ मण्डप है, जिनके स्तम्भों की संख्या ४२० हैं ।

आबु के जैन मन्दिर केवल जैन कला का ही नहीं, किन्तु भारतीय वास्तुकला का सर्वोत्कृष्ट विकसित रूप है । जनश्रुति के अनुसार इस मन्दिर के निर्माण में १८ करोड ५३ लाख सुवर्णमुद्राओं का व्यय हुआ । इस मन्दिर का निर्माण ग्यारहवीं सदी में हुआ । चालुक्य वंश के राजा भीमदेव के मन्त्री और सेनापति थे – 'विमलशाह' । पोरवाड वंशी विमलशाह ने इस अनुपमेय मन्दिर का निर्माण किया और उनके वंशजों ने दो–तीन बार मन्दिर का पुनरुद्धार किया । संगमरवर से बने हुए इस मन्दिर का वर्णन करना सर्वथा अशक्य है । जो भी व्यक्ति इसे देखता है वह अतीव सौंदर्य की अनुभूति से अभिभावित होता है । आबूरोड स्टेशन के नजदीक 'दिलवाडाब नामक स्थान में स्थित ये जैन मन्दिर देखने के लिए पूरी दुनियाभर से लोग आते रहते हैं ।

जैन तीर्थों में सौराष्ट्र प्रदेश के शत्रुंजय (पालीताणा) पर्वत पर जितने जैन मन्दिर हैं उतने अन्यत्र कहीं नहीं हैं । शत्रुंजय–माहात्म्य नामके कई ग्रन्थ भी लिखे गये हैं । इन मन्दिरों में से सबसे प्राचीन मन्दिर 'विमलशाह'ने और कुछ महत्त्वपूर्ण मन्दिर गुजराथ नरेश 'कुमारपाल'ने बनवाये हैं ।

सौराष्ट्र का दूसरा महान तीर्थक्षेत्र 'गिरनार' है । इस पर्वत का प्राचीन नाम 'ऊर्जयन्त' और 'रैवतकगिरि' है । कहा जाता है कि बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ने यहाँ तपस्या की थी । यहाँ का नेमिनाथ मन्दिर सबसे प्रसिद्ध, विशाल और सुन्दर है ।

जैन तीर्थक्षेत्रों में कुछ क्षेत्रों को 'सिद्धक्षेत्र' कहा गया है । अष्टापद (कैलास), चम्पा (बिहार), पावा (बिहार) और सम्मेदशिखर (बिहार), गजपन्थ और मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) इत्यादि चौदह सिद्धक्षेत्र सुप्रसिद्ध है । दिगम्बर परम्परा में चौदह सिद्धक्षेत्रों को नमन करनेवाले स्तोत्र भी पाये जाते हैं ।

जैन मूर्तियाँ :

जैनधर्म में मूर्तिपूजा सम्बन्धी उल्लेख प्राचीन काल से पाये जाते हैं । जैन अभ्यासकों का दावा है कि सिन्धु घाटी की खुदाई में हडप्पा से प्राप्त मस्तकहीन मूर्ती 'जैन मूर्ती'ही है । मथुरा स्तूप के भग्नावशेषों में भी जो मूर्तियाँ पायी गयी है वे मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित हैं । उसी संग्रहालय में कुषाणकालीन ४७ मूर्तियाँ सुरक्षित रखी है ।

कुप्तकालीन जैन मूर्तियाँ ईसा की चौथी शती से पायी जाती है । प्रतिमाओं पर पृथक्-पृथक् चिह्नों का प्रदर्शन आठवीं शती से धीरे-धीरे प्रचार में आया । इसलिए उसके बाद की मूर्ति के पादपीठ पर वृषभ, गज, बन्दर, अश्व आदि चिह्न दिखायी देते हैं । धातु से निर्मित प्रतिमाएँ भी प्राचीन काल से पायी जाती है । ये प्रतिमाएँ प्राय: ब्रान्झ से बनायी जाती थी । बहुतसी जैन धातु प्रतिमाएँ प्रिन्स ऑफ वेल्स संग्रहालय में सुरक्षित हैं । मैसूर के अन्तर्गत श्रवणबेलगोला के विन्ध्यगिरि पर विराजमान 'बाहुबलि' की पाषाणप्रतिमा सबसे ऊँची और प्रसिद्ध है । पूरे भारतभर में बाहुबलि की मूर्तियाँ अनेक स्थल पर पायी जाती है ।
जैन मूर्तिकला में तीर्थंकरों के अतिरिक्त जिन अन्य देवीदेवताओं को रूप प्रदान किया गया है उनमें यक्ष और यक्षिणियों की प्रतिमाएँ ध्यान देने योग्य है । चक्रश्वरी, धरणेन्द्र-पद्मावती, अंबिकादेवी, सरस्वती, अच्युतादेवी आदि अनेक मूर्तियाँ विविध आख्यानों से सम्बन्धित हैं ।

जैन चित्रकला :

जैन चित्रकला के सबसे प्राचीन उदाहरण तामील प्रदेश के तंजोर के समीप 'सितन्नवासल' की गुफा में मिलते हैं । इस गुफा का अलंकरण (चित्रकारी) महेन्द्रवर्मा ने सातवीं शती में किया था । यह राजा चित्रकला का इतना प्रेमी था कि उसने 'दक्षिण चित्र' नामक शास्त्र का संकलन किया था । जैन चित्रकारी में भित्ति-चित्र, ताडपत्रीय-चित्र, कागजपर-चित्र, काष्ठ-चित्र एवं वस्त्रपटपर चित्रित नमूने पाये जाते हैं । एलोरा के जैन मन्दिरों में भी छत पर चित्रकारी पायी जाती है । तिरुमलाई के जैन मन्दिर में, श्रवणबेलगोला के जैन मठ में भी जैन चित्रकारी के सुन्दर उदाहरण विद्यमान है ।

जैन शास्त्रभाण्डारों में जो ताडपत्रपर लिखित हस्तलिखित है उनमें भी चित्रकारी के नमूने अंकित हैं । जैसे ही कागज का आविष्कार हुआ वैसे भारत में ग्यारहवीं शती के आसपास चित्रकारी से युक्त कागज की पोथियाँ प्राप्त होती हैं । चान्दी और सोने से बनायी गयी स्याही से पोथियों पर हंस, फूलपत्तियाँ अथवा कमल आदि चित्रित किये गये हैं ।

जैन शास्त्रभाण्डारों में काष्ठ के ऊपर चित्रकारी के भी कुछ नमूने प्राप्त होते हैं । ये काष्ठ, पोथियों की रक्षा के लिए ऊपर-नीचे रखे जाते थे । काष्ठ के समान, वस्त्रपटों पर भी यक्ष-यक्षिणि, समवसरण, नवग्रह आदि के चित्र पाये जाते हैं ।

पुणे में स्थित भाण्डारकर प्राच्यविद्या संस्था में, ताडपत्रपर लिखित और कागज पर लिखित, बहुत पुरानी हस्तलिखित पोथियाँ (पाण्डुलिपियाँ) संग्रहीत की हुई हैं । कई पोथियों में 'मिनिएचर पेन्टिंग्ज्' पायी जाती है । एक-दो वस्त्रपट भी सुरक्षित रखे हैं । मनमोहक रंगों से खींचे गये चित्र की रेखाएँ और रंग किसी भी व्यक्ति को आकर्षित करते हैं । हस्तलिखित शास्त्र के विशारद कहते हैं कि, 'भारत में प्राप्त सभी हस्तलिखितों में जैन पोथियाँ संख्या से अधिक और सबसे सुन्दर है ।'

जैनविद्या के प्रत्येक अभ्यासक को चाहिए कि वह तत्त्वज्ञान और साहित्य से भी ज्यादा रुचि 'जैन कला' में रखें क्योंकि पुराने जमाने से अल्पसंख्याक होनेवाले जैन समाज ने भारतीय कलाओं को अभूतपूर्व योगदान दिया है, जो जैनियों की रसिक कलादृष्टि के मूर्त आविष्कार हैं ।

*** (डॉ. हीरालाल जैन द्वारा लिखित, ''भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान'' इस किताब के आधार से प्रस्तुत पाठ लिखा हुआ है ।)**

****

स्वाध्याय

अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) इस पाठ की प्रस्तावना के आधार से, मानवीय सभ्यता के विकास के तीन मुख्य मुद्दे लिखिए ।
२) कौनसे दो प्राचीन जैन ग्रन्थों में, ७२ कलाओं की नामावली पायी जाती है ?
३) जैनों का सर्वाधिक प्राचीन स्तूप कहाँ है ?
४) 'एलोरा' में कितनी जैन गुफाएँ हैं ?
५) जैन मन्दिरों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कौनसी शती से पाये जाते हैं ?
६) मन्दिर निर्माण की कौनसी तीन शैलियाँ है ? वे सामान्यत: कहाँ पायी जाती है ?
७) 'खजुराहो' में जैन मन्दिरों की संख्या कितनी है ?
८) 'राणकपुर' के मन्दिर के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी लिखिए ।
९) 'शत्रुंजय' तीर्थ कहाँ है ? उसकी क्या विशेषता है ?
१०) 'गिरनार' के पर्यायवाची नाम कौनसे हैं ? यह तीर्थक्षेत्र कौनसे तीर्थंकर से जुडा हुआ है ?
११) दिगम्बर मान्यता के अनुसार पाँच सिद्धक्षेत्रों के नाम लिखिए ।
१२) 'श्रवणबेलगोला' की प्रसिद्धि किस कारण से है ?
१३) जैन मूर्तिकला में अंकित कुछ यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाओं के नाम लिखिए ।
१४) जैन चित्रकारी के नमूने कौन-कौनसी पाँच विभिन्न पृष्ठभूमि पर चित्रित किये गये हैं ?
१५) इस पाठ में जैनों का भारतीय कलासंवर्धन में योगदान, कौन-कौनसे पाँच महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर आधार कर अधोरेखित किया है ?

ब) बडे प्रश्न (गुण ५)

१) कलिंगसम्राट 'खारवेल' के शिलालेख के बारे में , ८-१० पंक्तियों में जानकारी लिखिए ।
२) माऊन्टअबु के 'दिलवाडा' में स्थित जैन मन्दिर के बारे में संक्षिप्त जानकारी लिखिए ।

*** (वार्षिक परीक्षा में इस पर आधारित अन्य भी वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जा सकते हैं । जैसे कि – जोड लगाइए, उचित पर्याय चुनिए, रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए इ.)**

****

पाठ ४
तत्त्वार्थसूत्र की पृष्ठभूमि

प्राचीन काल से जैनधर्म, विशिष्ट तत्त्वज्ञान के आधार पर विकसित हुआ है । जैन परम्परा का सबसे प्राचीन साहित्य, अर्धमागधी और शौरसेनी इन दोनों प्राकृत भाषा में विस्तार रूप से रचा गया है । ईसवी की चौथी शताब्दि में 'उमास्वाति' (उमास्वामी) नाम के प्रख्यात जैन आचार्य हुए । तत्कालीन भारत के विद्वान, संस्कृत भाषा एवं संस्कृत सूत्रों में निबद्ध तत्त्वज्ञानों से (दर्शनों से) परिचित थे । जैन तत्त्वज्ञान प्राकृत में होने के कारण, उनका ध्यान जैन तत्त्वज्ञान के प्रति आकृष्ट नहीं हुआ था । उमास्वाति को यह कमी महसूस हुई । उन्होंने समग्र प्राकृत आगमों का अवलोकन करके, 'संस्कृत' भाषा में, जैन तत्त्वज्ञान का सार संग्रहीत किया । उमास्वाति ने संस्कृत भाषा में निबद्ध कुल ३५७ सूत्र रचे । दस अध्यायों में वे सूत्र विभक्त किये । इस ग्रन्थ का पूरा नाम 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' है । इसे संक्षेप में 'तत्त्वार्थसूत्र' कहा जाता है । तत्त्वार्थसूत्र जैन परम्परा में लिखित ग्रन्थों में, सबसे पहला संस्कृत ग्रन्थ है । ग्रन्थ इतना ख्यातिप्राप्त है कि चौथी शताब्दि से लेकर आजतक जैन तत्त्वज्ञान का प्रत्येक अभ्यासक बहुत ही बारीकी से तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन करता है ।

तत्त्वार्थ के दस अध्यायों की संक्षिप्त जानकारी :

अध्याय १ : ज्ञान

शीर्षक से ही मालूम होता है कि ज्ञान के विषय में जो जो जैन धारणाएँ है, वे इस अध्याय में ३५ सूत्रों में ग्रथित की है । उमास्वाति का कथन है कि साधक एवं अभ्यासकों के लिए, जैन परम्परा ने मोक्ष का मार्ग दिखाया है । इसलिए तत्त्वार्थ का प्रथम सूत्र यह है कि 'सम्यक्‌दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: ।' पदार्थों के यथातथ्य ज्ञान की रुचि 'सम्यक्‌दर्शन' है । उसके बाद जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों का निर्देश है । तत्त्वों के विस्तृत के ज्ञान के लिए चौदह निकष अंकित किये हैं ।

इस अध्याय का विषय ज्ञान की विशेष विचारणा है । इसका आरम्भ ज्ञान के पाँच प्रकारों से दिया है । वे इस प्रकार हैं - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्याय और केवलज्ञान । पाँच इन्द्रिय और मन के द्वारा प्राप्त किये जानेवाले ज्ञान को 'मतिज्ञान' कहा है । 'श्रुतज्ञान' मुख्यत: आगमज्ञान है लेकिन अन्य-अन्य माध्यमों के द्वारा प्राप्त ज्ञानकारी स्वरूप ज्ञान को भी श्रुतज्ञान कहा है । 'अवधि' और 'मन:पर्याय' ये दो ज्ञान विशिष्ट आत्मिक उन्नति के द्वारा प्राप्त होते हैं ।

अध्याय के अन्तिम दो सूत्र में पाँच नयों का निर्देश है । नय याने कि 'सत्य का आंशिक याने केवल एक दृष्टिकोन से होनेवाला ज्ञान' । उमास्वाति ने नयविषयक चर्चा को आरम्भ किया । बाद में उसी को सामने रखकर 'स्याद्‌वाद' और 'अनेकान्तवाद' का विकास हुआ ।

अध्याय २ : जीव

प्रथम अध्याय में सात पदार्थों का नाम निर्देश किया है । आगे के नौं अध्यायों में क्रमश: उनका विशेष विचार किया है ।

इस दूसरे अध्याय में जीव (आत्मा) इस पदार्थ का तात्त्विक स्वरूप भेद-प्रभेद आदि विषयों का वर्णन पाया जाता है । जीव कोई मूर्त चीज नहीं है । उसका वर्णन 'भावस्वरूप' में पाया जाता है । जीव में होनेवाले पाँच भाव ये हैं -१) औपशमिक २) क्षायिक ३) क्षायोपशमिक ४) औदयिक और ५) पारिणामिक । जीव का लक्षण 'उपयोग' है । उपयोग का सामान्य अर्थ है, 'बोधरूप व्यापार अथवा ज्ञानचेतना' । हर एक छोटे-बडे तरतम भाव से यह ज्ञानचेतना पायी जाती है ।

जीवों के मुख्य प्रकार दो हैं – संसारी और मुक्त । संसारी जीव में से कोई मनसहित होते हैं और कोई मनरहित होते हैं । उन्हें 'समनस्क–अमनस्क' अथवा 'संज्ञी–असंज्ञी' भी कहा जाता हैं । जीवों का हलन–चलन ध्यान में रखकर दो भेद किये जाते हैं । हलन–चलन न करनेवाले जीव 'स्थावर' है । उन्हें एक ही इन्द्रिय याने स्पर्शेन्द्रिय होता है । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये एकेन्द्रिय जीव, स्थावर हैं । दो इन्द्रियों से लेकर पाँच इन्द्रियों तक के जीव 'त्रस' हैं, याने हलन–चलन करनेवाले हैं । गति की दृष्टि से जीवों के विभाग चार बताये जाते हैं – देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंच ।

जैनधर्म का पुनर्जन्म पर दृढ विश्वास है । तत्त्वार्थ के दूसरे अध्याय में पुनर्जन्म विषयक प्रक्रिया स्पष्ट की गयी है । जीव के जन्मानुसारी मुख्य तीन प्रकार है – सम्मूर्च्छनजन्म, गर्भजन्म तथा उपपातजन्म । किसी भी जीव को जन्म लेने के लिए स्थान की आवश्यकता होती है । उसको 'योनि' कहते है । जैन परम्परा में योनि के नौं प्रकार कहे गये हैं । सामान्यत: हमें जीवों का जो शरीर दिखायी देता है उसे 'औदारिक' शरीर कहते है । लेकिन उसके साथ–साथ जैन परम्परा में वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण इन शरीरों का भी विवेचन पाया जाता है । जीव के चिह्न को 'लिंग' कहते है । उसे 'वेद' शब्द से जाना जाता है । लिंग या वेद तीन हैं – पुंवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद ।

इस अध्याय के अन्तिम सूत्र में आयुष्यविषयक विचार है । कालमृत्यु और अकालमृत्यु की चर्चा इस सूत्र के सम्बन्ध में पायी जाती है । सारांश से हम कह सकते हैं कि जीवविषयक समग्र चर्चा इस अध्याय में निहित है ।

अध्याय ३ : अधोलोक–मध्यलोक

द्वितीय अध्याय में गति की अपेक्षा से संसारी जीवों के नारक, मनुष्य, तिर्यंच और देव ऐसे चार प्रकार कहे गये हैं । प्रस्तुत तृतीय अध्याय में अधोलोक के नारकी जीवों का और मध्यलोक के मनुष्य और तिर्यंच जीवों का वर्णन है ।

जैन परम्परा ने नरक और स्वर्ग केवल संकल्पनात्मक नहीं माने हैं । उनको वास्तव मानकर, उनका स्थान, स्वरूप आदि का वर्णन पाया जाता है । नरक सात हैं – रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा और महातम:प्रभा । वे एक–दूसरे के नीचे हैं और नीचे की ओर अधिकाधिक विस्तारवाले हैं । सब नारकी जीव अशुभ लेश्यावाले हैं । वे असुरों के द्वारा दिये गये दु:ख भोगते हैं तथा एक–दूसरे को भी दु:ख देते हैं । नारकी जीवों की जघन्य स्थिति एक सागरोपम तथा उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है ।

मध्यलोक रचना द्वीप–समुद्र इस प्रकार की है । इन सबके मध्य में जम्बुद्वीप है । उनके मध्य में एक लाख योजनावाला मेरुपर्वत है । जम्बुद्वीप में भरत, ऐरावत इ. सात क्षेत्र हैं । जम्बुद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्धद्वीप को 'अढाईद्वीप' कहते है । सिर्फ इनमें ही मनुष्यों का निवास है । जैन परम्परा के अनुसार भरत, ऐरावत और महाविदेह ये तीन कर्मभूमियाँ हैं । इस अध्याय के अन्तिम दो सूत्रों में मनुष्य और तिर्यंचों की जघन्य और उत्कृष्ट आयु बतायी ह॒ ।

सारांश में यह कह सकते है कि जैन परम्परा की भौगोलिक अवधारणाएँ इस अध्याय में निहित है । सद्य:कालीन प्रचलित अवधारणाओं से ये मिलती–जुलती है या नहीं, यह प्रश्न बहुत ही विचारणीय है ।

अध्याय ४ : देवलोक

इस चतुर्थ अध्याय में देवलोक याने स्वर्गों का समग्र वर्णन है । जैन मान्यता के अनुसार उत्तरोत्तर श्रेष्ठ स्वर्गों की रचना एक भौगोलिक वस्तुस्थिति है । इन स्वर्गों में रहनेवाले जीवों को 'देवगति के जीव' कहा जाता है । पुण्य और सुखोपभोगों की तरतमता के अनुसार उनमें कई भेद भी बताये गये हैं । देवगति के जीवों को 'आराधना के योग्य' नहीं माना गया है । स्वर्ग में उनका निवास कायमस्वरूपी नहीं है । पुण्यफल का भोग समाप्त होने पर वे दूसरी गति में चले जाते हैं । किसी भी स्वर्गनिवासी देव को 'ईश्वर' नहीं कहा है ।

देवों के कुल चार निकाय याने समूहविशेष है । वे इस प्रकार हैं - १) भवनपति २) व्यन्तर ३) ज्योतिष्क और ४) वैमानिक ।

भवनपति देव दस प्रकार के हैं । व्यन्तर आठ प्रकार के हैं । ज्योतिष्क पाँच प्रकार के और वैमानिक बारह प्रकार के हैं । प्रत्येक प्रकार का नाम और कार्यसहित वर्णन सुविस्तृत रूप में, इस अध्याय के अलग-अलग सूत्र में दिया है ।

अन्तिम दो स्वर्गपटल छोडकर बाकी सब में दो-दो इन्द्र होते हैं । इन चारों देवनिकायों में शुभलेश्याएँ होती है । चार निकायों में से वैमानिक देव श्रेष्ठ हैं । उनके दो प्रकार हैं - १) कल्पोपपन्न २) कल्पातीत ।

इस अध्याय के कुछ सूत्रों में देवों के वैषयिक सुखों का विचार किया गया है । नीचे-नीचे की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देवों का सुख अधिकाधिक माना गया है । सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारका आदि सबको ज्योतिष्क देव के स्वरूप में स्वीकारा है ।

आगे के सूत्रों में देवों का शरीर, अभिमान, उच्छ्वास, आहार, वेदना आदि का वर्णन पाया जाता है ।

जैन पौराणिक मान्यता के अनुसार, अरिहंत भगवान के जन्माभिषेक आदि प्रसंगो पर देवों का आसन कम्पित होता है । वे अवधिज्ञान से तीर्थंकर की महिमा को जानते हैं । कुछ देव उनके निकट पहुँच कर, उपासना के द्वारा आत्मकल्याण करते हैं । सारांश में हम यह कह सकते हैं कि, जैन परम्परा के अनुसार, अरिहंत तीर्थंकर आदि की महिमा देवों से कई गुने ज्यादा है ।

इस अध्याय में तिर्यंचों का वर्णन केवल एक सूत्र में किया है । देव-नारक तथा मनुष्य को छोडकर, शेष सभी संसारी जीव तिर्यंच है । देव-नारक और मनुष्य केवल पंचेन्द्रिय होते है । तिर्यंच में एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक सब जीव आ जाते हैं । देव-नारक और मनुष्य, लोक के विशिष्ट भागों में ही होते हैं । तिर्यंच लोक के सब भागों में हैं ।

अध्याय के अन्तिम भाग में, चतुर्निकाय देवों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति बतायी है ।

अध्याय ५ : जीव

दूसरे अध्याय से चौथे अध्याय तक, जीवतत्त्व का वर्णन हुआ । प्रस्तुत अध्याय में अजीवतत्त्व का विचार किया गया है ।

जीव का लक्षण 'उपयोग' है । जिसमें उपयोग अर्थात् ज्ञानचेतना न हो वह 'अजीव' है । जीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये पाँच 'अस्तिकाय' हैं । इनको अस्तिकाय कहा है क्योंकि ये एकप्रदेशस्वरूप अथवा अवयवरूप नहीं हैं । परन्तु प्रचय अर्थात् समूहरूप है । इन पाँच अस्तिकायों में धर्म-अधर्म-आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य 'अजीवद्रव्य' हैं । पाँच अस्तिकायों में अगर कालद्रव्य को सम्मीलित किया तो षड्द्रव्य हो जाते हैं । काल 'अजीव' है किन्तु वह अस्तिकाय नहीं है ।

छह द्रव्यों में अजीव पुद्गल द्रव्य 'मूर्त' है । बाकी पाँच द्रव्य 'अमूर्त' है । सब द्रव्य 'नित्य' है । सब द्रव्यों की स्थिति लोकाकाश में है । क्रम से गति और स्थिति को सहाय करना, धर्म और अधर्म के कार्य हैं । आकाश सबको 'अवकाश' याने जगह, स्थान देता है । जैनों के सिवा, किसी भी भारतीय तत्त्वज्ञानों ने धर्म और अधर्म द्रव्य की संकल्पना नहीं की है ।

जगत् के सब जीव एकदूसरे के आधार से जीते हैं । शरीर से सम्बन्धित सारे कार्य पुद्गलों के उपकार है याने कि शरीर, वाणी, मन, उच्छ्वास-निश्वास यह सब पुद्गलों के सिवा शक्य नहीं है ।

'काल' वस्तुत: एक अनुमानित द्रव्य है । पदार्थों के परिणाम देखकर, काल का अनुमान किया जाता है । सेकंद, मिनिट, घंटा आदि सब व्यावहारिक दृष्टि से काल के विभाग है ।

इस अध्याय में पाँच-छह सूत्रों में पुद्‌गल परमाणु एवं स्कन्धों का तथा परमाणुस्कन्धों के भेदों का विस्तुत वर्णन है । एक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि, जैन परम्परा का अणुविज्ञान एवं भौतिकविज्ञान, इस अध्याय में निहित है ।

ये सब षड्‌द्रव्य 'सत्' है याने real है । सत् की परिभाषा जैन अलग ही तरीके से करते हैं - जिस पदार्थ में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य ये तीनों अंश होते हैं वह 'सत्' है । उत्पाद और व्यय, पदार्थों के पर्यायों में होते है । द्रव्य और उसके मूल गुणों में नहीं होते । द्रव्य, द्रव्यरूप से वह पदार्थ 'ध्रुव' याने constant होता है । द्रव्य का यह लक्षण सब द्रव्य को समान रूप से लागू होता है । यद्यपि षड्‌द्रव्यों के अपने-अपने अलग कार्य है तथापि 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' यह व्याख्या समान रूप से एक है ।

सारांश में हम कह सकते हैं कि, द्रव्य-गुण-पर्याय रूप विशेष सिद्धान्त का इस अध्याय में कथन है । षड्‌द्रव्यों की संकल्पना उनके कार्यद्वारा और समान लक्षणद्वारा स्पष्ट की है । पुद्‌गल या परमाणु के विशेष, उसपर रहनेवाले गुण, उनमें होनेवाले स्कन्धरूप बन्ध आदि का शास्त्रीय और तार्किक वर्णन इस अध्याय की विशेषता है ।

अध्याय ६ : आस्रव

दूसरे अध्याय से पाँचवें अध्याय तक षड्‌द्रव्यों का याने व्यावहारिक वास्तविकता का वर्णन समाप्त हुआ । छठे अध्याय से हम नैतिक (ethical)-धार्मिक (religious) एवं आध्यात्मिक (spiritual) प्रदेश में प्रवेश कर रहे हैं ।

सामान्यत: 'योग' शब्द का अर्थ ध्यान-धारणा-समाधि आदि होता है । लेकिन इस अध्याय के प्रथम सूत्र में ही स्पष्टत: कहा है कि, काया-वाचा और मन की हरएक क्रिया का 'योग' कहते हैं । इस योग के द्वारा जीव में स्पन्दन निर्माण होते हैं । वह निमित्त पाकर कर्म के अतिसूक्ष्म परमाणु आत्मा में (जीव में) प्रवेश करते हैं । इसलिए तीन योगों को ही 'आस्रव' कहा है । शुभ क्रियाओं के द्वारा 'पुण्य' का आस्रव होता है । अशुभ क्रियाओं के द्वारा 'पाप' का आस्रव होता है ।

आस्रव के अनन्तर कर्मपरमाणु आत्मा को चिपक जाते हैं । जिनमें कषायों की मात्रा अधिक है उनमें चिपकने की क्रिया दृढतर होती है । कषाय न हो तो कर्म-परमाणु तुरन्त छूट जाते हैं ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्मों के आठ प्रकार हैं । प्रत्येक कर्म के बन्धहेतु अर्थात् आस्रव होते हैं । वे अलग-अलग होते हैं । उन सबकी गिनती इस अध्याय में विस्तार रूप से की है । एक उदाहरण देकर स्पष्ट करते है - इस अध्याय के तेरहवें सूत्र में कहते हैं कि, भूत-अनुकम्पा, व्रती-अनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि योग, क्षान्ति और शौच ये सातावेदनीय कर्म के बन्धहेतु हैं । इसका मतलब यह है कि, उपरोक्त गुणों की अगर हम आराधना करें तो उसके फलस्वरूप हमें सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है याने सौख्य की अनुभूति होती है ।

अध्याय ७ : व्रत

जैनधर्म की यह दृढ श्रद्धा है कि, श्रद्धा और ज्ञान अगर आचरण में परिणत नहीं हुए तो व्यक्ति मोक्षमार्ग पर अग्रेसर नहीं हो सकता । इस सातवें अध्याय में अच्छे आचार के दिग्दर्शन के लिए व्रतों का विवेचन है ।

पहले सूत्र में कहा है कि, 'हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह से (मन-वचन और काय द्वारा) निवृत्त होना व्रत है ।'

साधुधर्म और श्रावकधर्म स्पष्ट करते हुए उमास्वाति कहते हैं कि, हिंसा आदि से अल्प अंश में विरति 'अणुव्रत' है और सर्वांश से विरति 'महाव्रत' है । इस अध्याय का यह विशेष है कि पाँचों व्रतों की प्रत्येकी

पाँच-पाँच भावनाएँ यहाँ स्पष्ट की है । इसके अलावा मैत्री-प्रमोद-कारुण्य और माध्यस्थ इन चार नैतिक गुणों का प्रकर्ष भी यहाँ महत्त्वपूर्ण बताया है ।

अहिंसा इत्यादि व्रतों की व्याख्याएँ नहीं दी है । परन्तु हिंसा-असत्य-चौर्य-अब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पाँच मुख्य दुर्गुणों की व्याख्या देने का सफल प्रयास किया है ।

व्रत के बारे में मुख्यत: कहा है कि, सच्चा व्रती बनने के लिए पहली शर्त यह है कि 'शल्य' का त्याग किया जाय । शल्य तीन हैं । वे मानसिक दोष हैं । दंभ, कपट, भोगलालसा और असत्य का पक्षपात हमें पहले छोडना चाहिए । उसके बिना 'खुद को व्रती कहना', ढोंग है ।

इस अध्याय के पन्द्रहवें और सोलहवें सूत्र में समग्र श्रावकधर्म का निरूपण है । साधुधर्म और श्रावकधर्म के पश्चात् संलेखना याने संथारा का कथन किया है । अठारहवें सूत्र से लेकर, बत्तीसवें सूत्र तक, श्रावकव्रतों के अतिचारों का विस्तृत वर्णन है । अन्तिम दो सूत्रों में 'दान' की विशेषता बतायी है ।

सारांश में हम कह सकते हैं कि, यद्यपि इसमें व्रत का सामान्य वर्णन है तथापि यह अध्याय गृहस्थ या श्रावक की दृष्टि से अनन्यसाधारण महत्त्व रखता है ।

अध्याय ८ : बन्ध

यहाँ बन्ध का अर्थ है 'कर्मबन्ध' । आस्रव के द्वारा आत्मप्रदेश में प्रविष्ट कर्मपरमाणु आत्मा के साथ बन्धे जाते हैं । यह अध्याय इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि जैन तत्त्वज्ञान का मूलाधार जो कर्मसिद्धान्त, वह अच्छी तरह से समझने के लिए इस अध्याय के आकलन की नितान्त आवश्यकता है ।

पहले सूत्र में बन्ध के पाँच हेतु याने कारण बताये हैं । यद्यपि पाँचों महत्त्वपूर्ण है तथापि जैसे कि पहले बताया है 'कषाय' और 'योग' ये दो हेतु अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । दूसरे और तीसरे सूत्र में बन्ध की संक्षिप्त और सारगर्भ व्याख्या दी है । चौथे सूत्र में बन्ध के चार मुख्य प्रकार बताये हैं । वे इस प्रकार हैं - प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभावबन्ध ।

प्रकृतिबन्ध में मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियों का निर्देश है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि आठ कर्मों को मूल प्रकृति कहा है । आठ मूलप्रकृतियों के क्रमश: पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो तथा पाँच भेद बताये हैं । नामकर्म की बयालीस प्रकृतियों में हरएक व्यक्ति की सारी गुणसूत्रविषयक विशेषतायें तथा शारीरिक-मानसिक विशेषतायें विस्तार से बतायी है ।

प्रकृतिबन्ध के विस्तृत विवेचन के बाद स्थितिबन्धविषयक सूत्रों में आठ कर्म आत्मा के साथ रहने की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति बतायी है ।

अनुभावबन्धविषयक सूत्र तीन हैं । वे बहुतही संक्षिप्त हैं ।

प्रदेशबन्धविषयक सूत्र में कर्मपरमाणुओं के स्कन्ध और आत्मा, इनके सम्बन्ध के बारे में अनेक दृष्टि से आठ प्रश्न उपस्थित किये हैं । जिनके उत्तर सूत्र के एकेक शब्द के आधार से, हम दे सकते हैं ।

लक्षणीय बात यह है कि यद्यपि व्यवहार में पुण्यपाप को अत्याधिक महत्त्व दिया जाता है तथापि अध्याय के अन्तिम सूत्र में, आठ पुण्यप्रकृतियाँ दी है और कहा है कि शेष सभी प्रकृतियाँ पापरूप है । तत्त्वार्थसूत्र की यह मान्यता बाद में दृढमूल नहीं हुई । अन्य ग्रन्थों में इसका विस्तार किया गया । अन्तिमत: पुण्यरूप में ४२ प्रकृतियाँ और पापरूप में ८२ प्रकृतियाँ तय की गयी ।

सारांश में हम कह सकते हैं कि, बन्ध तत्त्व का वर्णन करनेवाला यह अध्याय कर्मसिद्धान्त की दृढ पृष्ठभूमि है । इसी के आधार से आगे जाकर सैंकडों कर्मग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आचार्यों ने बनाये ।

अध्याय ९ : संवर-निर्जरा

तत्त्वों की गिनती में आस्रव और बन्ध के बाद क्रमश: संवर और निर्जरा तत्त्व आता है । इस अध्याय में संवर और निर्जरा, दोनों का एकत्रित निरूपण है । आस्रव का निरोध करना 'संवर' है । वह संवर गुप्ति-

समिति-धर्म-अनुप्रेक्षा-परीषहजय और चारित्र से होता है । तीन प्रकार की गुप्ति-पाँच प्रकार की समिति-दशविध धर्म-बारह प्रकार की अनुप्रेक्षा और बाईस प्रकार के परीषहों का अध्ययन हमने पहले ही किया है । उन सबकी व्याख्या और प्रकार इस अध्याय के सूत्रों में निहित है ।

यहाँ चारित्र पाँच प्रकार का बताया है । वे पाँच प्रकार आत्मिक शुद्धि पर आधारित हैं । संवर के उपायों में 'तप' का महत्त्व अनन्यसाधारण है । उससे दोहरा लाभ होता है । तप के कारण नूतन आस्रवों को रोक लगता है । साथ ही पूर्वकृत कर्मों की निर्जरा भी होती है । तप के अन्तरंग और बाह्य भेदों के बारे में हम पहले ही जान चुके हैं ।

इस अध्याय के २७ वे सूत्र से लेकर ४६ वे सूत्र तक, चार प्रकार के ध्यानों का विस्तृत वर्णन है । आगे के सूत्र में 'गुणश्रेणि' का सिद्धान्त और उसमें होनेवाली कमनिर्जरा का तरतम भाव बताया है ।

अन्तिम दो सूत्रों में निर्ग्रन्थों के पाँच प्रकार और उनकी विशेषतायें बतायी हैं ।

सारांश में हम कह सकते हैं कि संवर और निर्जरा पर आधारित यह अध्याय साधु के आचार पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है । गुणस्थानों का संक्षिप्त वर्णन और ध्यान की प्रक्रिया का वर्णन इस अध्याय की विशेषता है ।

अध्याय १० : मोक्ष

जैनधर्म ने हमेशा 'मोक्ष' या 'निर्वाण' को ही मानवी जीवन का सर्वोच्च ध्येय माना है । संवर और निर्जरा उसके उपाय हैं । अत: तत्त्वार्थसूत्र के अन्तिम अध्याय में 'मोक्ष' का स्वरूप बताया है ।

आठ में से चार कर्म अघातिकर्म हैं । मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय ये चार घातिकर्म हैं । चारित्रपालन के अन्तिम पडाव पर आठों कर्मों का क्षय होता है । तत्त्वार्थ के द्वितीय अध्याय में आत्मा के जो पाँच भाव बताये हैं उनमें से चार भावों का क्षय मोक्षावस्था में होता है । पारिणामिक भाव शेष रहते हैं । याने की मुक्त आत्मा का भी जीवत्व और अस्तित्व आदि कायम रहता है । कर्मक्षय के बाद मुक्त जीव तुरन्त ही लोक के अन्त तक उपर जाता है । सिद्धशीला पर मुक्त जीव हमेशा स्थित रहते हैं । किसी भी अवस्था में संसार में वापस नहीं आते ।

इस अध्याय के अन्तिम सूत्र में बारह मुद्दों के आधार से सिद्धों की विशेषताओं का विचार किया है । इस प्रकार मोक्ष की प्रक्रिया और मुक्त जीवों का वर्णन इस अध्याय का मुख्य प्रतिपाद्य है ।

****

स्वाध्याय

अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता कौन है ?

२) तत्त्वार्थसूत्र का पूरा नाम क्या है ?

३) तत्त्वार्थसूत्र कौनसी भाषा में लिखा है ?

४) पाँच प्रकार के ज्ञानों का वर्णन तत्त्वार्थ के कौनसे अध्याय में है ? उनके नाम लिखिए ।

५) तत्त्वार्थ के दूसरे अध्याय में सात तत्त्वों में से कौनसे तत्त्व का विस्तृत वर्णन पाया जाता है ?

६) जीव के पाँच भेद कौनसे हैं ?

७) संज्ञी और असंज्ञी का मतलब क कया है ?

८) पुनर्जन्मविषयक विचार तत्त्वार्थ के कौनसे अध्याय में बताए हैं ?

९) जैन परम्परा में पाँच प्रकार के शरीर कौनसे हैं ?

१०) तत्त्वार्थ के तीसरे अध्याय का नाम लिखिए ।
११) क्या नरक और स्वर्ग केवल संकल्पनात्मक हैं ?
१२) जैन दृष्टि से भौगोलिक अवधारणाएँ तत्त्वार्थ के कौनसे अध्याय में निहित है ?
१३) क्या देवलोक के देव ईश्वर हैं ?
१४) देवों के कुल कितने निकाय हैं ? उनके नाम लिखिए ।
१५) ग्रह, नक्षत्र, तारका आदि कौनसे प्रकार के देव हैं ?
१६) तत्त्वार्थ के पाँचवें अध्याय का मुख्य विषय कौनसा है ?
१७) अजीव किसे कहते हैं ?
१८) षड्द्रव्यों में से अजीव द्रव्य कौनसे हैं ?
१९) षड्द्रव्यों में पाँच अस्तिकाय कौनसे हैं ?
२०) जगत् के सब जीव एकदूसरे के आधार से जीते हैं - इस अर्थ का सूत्र शिक्षिका को पूछकर लिखिए ।
२१) जैन परम्परा का अणुविज्ञान एवं भौतिक विज्ञान कौनसे अध्याय में निहित है ?
२२) हरएक द्रव्य (सत्) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है - इस वाक्य का स्पष्टीकरण कीजिए ।
२३) सामान्यत: योग का क्या अर्थ है ? जैन परम्परा का विशेष अर्थ क्या है ?
२४) आस्रव किसे कहा है ? आस्रव के मुख्य दो हेतु कौनसे हैं ?
२५) तत्त्वार्थ के कौनसे अध्याय में, आठ कर्मों में से प्रत्येक के बन्धहेतु दिये हैं ?
२६) तत्त्वार्थ के अनुसार व्रत किसे कहते हैं ?
२७) तत्त्वार्थ के व्रत अध्याय में कौनसे चार महत्त्वपूर्ण नैतिक गुण अंकित किये हैं ?
२८) श्रावकधर्म की दृष्टि से तत्त्वार्थ का कौनसा अध्याय महत्त्वपूर्ण है ?
२९) कर्मबन्ध के मुख्य चार प्रकार कौनसे हैं ? इन चारों का सुविस्तृत वर्णन कौनसे अध्याय में है ?
३०) मोक्ष के उपायभूत 'संवर और निर्जरा का वर्णन', तत्त्वार्थ के कौनसे अध्याय में किया है ?
३१) 'तप' का महत्त्व अनन्यसाधारण क्यों है ?
३२) साधुआचार, गुणस्थान और ध्यान इनपर कौनसे अध्याय में अधिक प्रकाश डाला है ?
३३) मुक्तात्मा कहाँ पर विराजमान होते हैं ?
३४) तत्त्वार्थसूत्र के १० अध्यायों के नाम क्रम से लिखिए ।

*** (वार्षिक परीक्षा में इनमें से पाँच-छह प्रश्न किसी न किसी रूप में अनिवार्य रूप से पूछे जायेंगे ।)**

****

पाठ ५
सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृत
(चयनित अंश तथा स्पष्टीकरण)

हमारे भारत देश में स्वातन्त्र्यप्राप्ति के बाद, भारतीय संविधान के अनुसार धर्मनिरपेक्षता का तत्त्व अपनाया गया है । साथ ही साथ भारतीय संविधान ने हरएक नागरिक को धार्मिक स्वातन्त्र्य भी प्रदान किया है । उसी के अनुसार जैनधर्म के धार्मिक लोग आहार-नियम, धार्मिक-क्रिया, स्तोत्र-पठन, जप, उपवास आदि आचार में तत्पर रहते हैं । लेकिन धर्म में आचार का महत्त्व जितना है उससे कई बढकर शाश्वत नीतिमूल्यों का भी (universal ethical values) महत्त्व है । आज के भारत के नवयुवक चाहते हैं कि आचार प्रधानता (religiocity) एवं आध्यात्मिकता (spirituality) से उपर उठकर हम शाश्वत नीतिमूल्यों की आराधना करें ताकि हम विश्व के एक अच्छे घटक बनें ।

जैन आचार्यों ने लिखे हुए साहित्यरूपी समुद्र में बहुत ही गिनेचुने ग्रन्थ ऐसे हैं, जो नीतिमूल्यों को सामने रखकर लिखे हुए हैं । उनमें से सबसे सुन्दर और प्रभावशाली, अमूल्य ग्रन्थ है नीतिवाक्यामृत । जैन आचार्य सोमदेवसूरि ने यह 'संस्कृत' भाषा में लिखा है । सोमदेव दसवीं शताब्दि के प्रख्यात दिगम्बर आचार्य है । यह सारा ग्रन्थ गद्य में है और सूत्र पद्धति से लिखा है । वाक्य छोटे-छोटे है लेकिन बहुत बडी बात कहने में सोमदेव सिद्धहस्त है ।

भारतीय संस्कृति में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को महत्त्व दिया गया है । 'धर्म' पुरुषार्थ में ब्राह्मण परम्परा का मानवधर्मशास्त्र याने 'मनुस्मृति' प्रसिद्ध है । चार में दूसरा पुरुषार्थ 'अर्थ' है । अर्थपुरुषार्थ का एक प्रमुख भाग राजनीति है । राजनीति का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' है । वह चाणक्य याने कौटिल्य ने लिखा है । चाणक्य के बाद 'कामन्दक' नाम के विद्वान ने लिखा हुआ 'नीतिसार' प्रसिद्ध है । नीतिसार के बाद 'नीतिवाक्यामृत' एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें शुद्ध राजनीति की चर्चा की गयी है । दसवीं शताब्दि में नीतिमूल्यों पर आधारित जो भी चर्चाएँ की गयी, उसका सार नीतिवाक्यामृत में ग्रथित है । चार में तीसरा पुरुषार्थ है 'काम' पुरुषार्थ । 'वात्स्यायन' नाम के आचार्य का 'कामसूत्र' संस्कृत साहित्य में अमर है । भारतीय परम्परा में तत्त्वज्ञानप्रधान ग्रन्थ 'मोक्षशास्त्र' नाम से प्रसिद्ध है । जैन परम्परा में 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' का दूसरा नाम ही 'मोक्षशास्त्र' है ।

सोमदेव के नीतिवाक्यामृत में कुल '३२ समुद्देश' याने विभाग है । राजनीति का ग्रन्थ होने के कारण कई बाते स्वामी (राजा)-अमात्य-कोश-मन्त्री-पुरोहित-दूत-युद्ध आदि से सम्बन्धित है । तथापि कम से कम ८-१० प्रकरण या विभाग ऐसे हैं जिनमें धर्म-अर्थ-काम-व्यसन-सदाचार-व्यवहार आदि विषयों को परिलक्षित करके सामान्य नीतितत्त्व बहुत ही प्रभावी तरीके से बतायें हैं । इस पाठ में धर्म-अर्थ-काम इन प्रकरणों (समुद्देशों से) कुछ अंश चयनित करके, उनमें निहित नीतिमूल्यों की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है ।

(अ) धर्मसमुद्देश

१) अथ धर्मार्थकामफलाय राज्याय नम: ।

अर्थ : धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों का फल देनेवाले राज्य को (राष्ट्र को) वन्दन हो ।

भावार्थ : धार्मिक ग्रन्थों के आरम्भ में, मंगलाचरण देने की प्रथा प्राय: सभी भारतीय साहित्य में पायी जाती है । जैन आचार्य सोमदेव ने भी, प्रारम्भिक सूत्र में यह प्रथा निभायी है । नीतिवाक्यामृत यह ग्रन्थ राजनीति (politics), अर्थशास्त्र (economics) और मूल्यशास्त्र (ethics) इन तीनों को परिलक्षित करता है । इसी

वजह से किसी भी धर्म सम्प्रदाय के देव-देवताओं को ध्यान में रखकर मंगलाचरण नहीं दिया है । एक सुजाण नागरिक होने के कारण राज्य को अथवा राष्ट्र को नमन किया है ।

२) यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म: ।

अर्थ : जिसके आचरण से अभ्युदय और नि:श्रेयस की प्राप्ति होती है वह धर्म है ।

भावार्थ : 'अभ्युदय' का मतलब है ऐहिक समृद्धि और 'नि:श्रेयस' का मतलब है स्वर्ग और मोक्ष रूप पारलौकिक हित की सिद्धि ।'धर्म' शब्द की कई परिभाषाएँ दी जाती है । लेकिन सोमदेव चाहते हैं कि उनकी परिभाषा किसी भी विशिष्ट धर्म से निगडित न हो । विशिष्ट धर्मों से उपर उठकर उन्होंने पारलौकिक हित के साथ-साथ, ऐहिक समृद्धि को भी धर्म का फल माना है । सुदृढता से अनुशासित और समृद्ध राज्य में ही इस प्रकार के उभय फलदायी धर्म पालन की सम्भावना है । इसी वजह से राज्य या राष्ट्र को वन्दन करके उसके अनन्तर धर्म की व्याख्या दी है ।

३) अधर्म: पुनरेतद्विपरीतफल: ।

अर्थ : अधर्माचरण इससे विपरीत फल देता है ।

भावार्थ : धर्माचरण कल्याणकारी है और अधर्माचरण पाप, अशुभ और अकल्याण से सम्बन्धित है । सोमदेव का मतलब है कि अगर व्यक्ति हिंसा, चोरी, असत्य आदि दुर्गुणों का सहारा ले तो वह न ऐहिक समृद्धि का भागी होता है और न स्वर्ग-मोक्ष आदि का भागी होता है । मद्य-मांस और स्त्री सेवन आदि व्यसन भी अधर्माचरण में निहित हैं ।

४) सर्वसत्वेषु हि समता सर्वाचरणानां परमाचरणम् ।

अर्थ : सब प्राणिमात्रों के प्रति समभाव की भावना और समतापूर्ण आचरण ही सब प्रकार के आचरणों में श्रेष्ठ आचरण है ।

भावार्थ : समता का मतलब है किसी के प्रति वैरभाव न रखना । सोमदेव चाहते हैं कि स्नान, दान, जप, होम आदि बाह्य क्रियाकाण्डों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, भूतमात्रों के प्रति समभाव और दयापूर्ण आचरण । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय संविधान में भी समता याने equanimity को राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मूल्य माना है ।

५) तद्व्रतमाचरितव्यं यत्र प संशयतुलामारोहत: शरीरमनसी ।

अर्थ : उस व्रत का आचरण करें, जिसको स्वीकार कर शरीर और मन दोलायमान अवस्था में न जाये ।

भावार्थ : धर्माचरण के लिए सामान्य गृहस्थ स्त्री-पुरुष को आवश्यक है कि वे किसी न किसी स्वरूप में व्रतों का आचरण करें । सोमदेव ने किसी भी विशिष्ट परम्परा के विशिष्ट व्रतों का निर्देश यहाँ नहीं किया है । व्रत या नियम कुछ भी हो लेकिन उसका अंगीकार करने पर उसे आखिर तक निभाना ही चाहिए । शरीर और मन दोनों को पीडादायक व्रत, व्रती के मन में सन्देहावस्था उत्पन्न करता है । वह चाहने लगता है कि यह पीडादायक व्रत बीच में ही छोडू । तात्पर्यार्थ से सोमदेव चाहते हैं कि व्रत का स्वीकार अपने शक्ति के अनुसार करें । क्लेशदायक अनुष्ठानों को वे व्रत की कोटि में नहीं रखना चाहते ।

अन्यत्र सोमदेव कहते हैं कि यद्यपि व्रत या नियम का ग्रहण वांछनीय है तथापि जिसके मन में वैररहित अहिंसाभाव नित्य उपस्थित है, वह व्यक्ति व्रत ग्रहण के बिना भी स्वर्ग का भागी हो सकता है ।

६) ऐहिकामुत्रिकफलार्थमर्थव्ययस्त्याग: ।

अर्थ : ऐहिक और आमुत्रिक याने पारलौकिक फल के प्राप्ति के लिए किया हुआ अर्थव्यय (धन का व्यय) 'त्याग' कहलाता है ।

भावार्थ : सभी भारतीय परम्पराओं में 'दान' का महत्त्व अनन्यसाधारण है । 'त्याग' का महत्त्व भी बार-बार बताया गया है । इस सूत्र में सोमदेव ने दोनों का सम्बन्ध परस्पर स्थापित किया है । यद्यपि त्याग याने दान, विविध प्रकार का किया जाता है तथापि गृहस्थ के लिए प्रमुखता से अर्थव्ययरूपी त्याग ही मायने रखता है । चाहे अन्नदान हो, या वस्त्रदान हो उसमें अर्थव्यय अनिवार्य रूप से आता ही है । सोमदेव ध्वनित करते हैं कि आसक्तिरहित दान याने त्याग से ऐहिक उन्नति होती है और पारलौकिक भी ।

७) पात्रं च त्रिविधं धर्मपात्रं कार्यपात्रं कामपात्रं चेति ।

अर्थ : पात्र तीन प्रकारके हैं - धर्मपात्र, कार्यपात्र और कामपात्र ।

भावार्थ : संस्कृत सूत्रों में नीतिविषयक ग्रन्थ लिखनेवाले सोमदेव बहुत ही तर्कनिष्ठ शैली का अनुकरण करते हैं । इसी वजह से त्याग या दान के अनन्तर, पात्रता-अपात्रता की चर्चा करना अत्यन्त स्वाभाविक है । पात्रता सम्बन्ध व्यक्तियों का उन्होंने दिया हुआ त्रिप्रकारक वर्गीकरण अभिनव भी है और व्यावहारिक भी ।

'धर्मपात्र' के अन्तर्गत उन्होंने धार्मिक दृष्टि से दिये हुए अर्थव्यय का निर्देश किया है । जैसे कि भिक्षु आदि को दान, मन्दिर-मुर्ति आदि के लिए दान, गुरु आदि के लिए दिया हुआ दान इ. ।

'कार्यपात्र' शब्द का मतलब सोमदेव स्पष्ट करते हैं कि, 'हमारे द्वारा अंगीकृत अच्छे कार्यों को सिद्ध करने में, जो जो हमें सहायभूत होते हैं उनका अन्तर्भाव कार्यपात्रों में हो सकता है ।' हमारे सगे-सम्बन्धी, नोकर-चाकर, व्यवसाय के भागीदार और सामाजिक क्षेत्र के लोग इन सबका अन्तर्भाव कार्यपात्र व्यक्तियों में हो सकता है । सोमदेव के अनुसार इन सबको की हुई यथाशक्ति मदद भी त्याग या दान है ।

'कामपात्र' शब्द की योजना के द्वारा सोमदेव स्त्रियों के बारे में एक अनोखा दृष्टिकोण प्रकट करते हैं । उनके अनुसार कामपात्र याने खुद की पत्नी । इस पुरुषप्रधान संस्कृति के माहौल में पत्नी के लिए किये हुए अर्थव्यय का इतना स्पष्ट उल्लेख बहुत ही सराहनीय है ।

सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इन तीनों की पात्रता में उन्होंने तरतमभाव नहीं रखा है । तीनों को समान महत्त्व दिया है ।

८) सदैव दु:स्थितानां को नाम बन्धुः ।

अर्थ : हमेशा दीन-दु:खी-दरिद्र - अवस्था में रहनेवाले का तारणहार आखिर कौन हो सकता है ?

भावार्थ : सोमदेव की व्यावहारिकता और सामाजिक भान इस सूत्र में अधिकता से अधोरेखित होता है । विशेषत: भारत जैसे देश में दीन-दु:खी-दरिद्र लोगों की बिलकुल भी कमी नहीं है । किसी भी सामान्य गृहस्थ के लिए, चाहे वह कितना भी दानी क्यों न हो, आम जनता का दैन्य-दारिद्र्य दूर करना सर्वथा अशक्यप्राय बात है । न्यायमार्ग से अर्जित अपनी सम्पत्ति में से, विशिष्ट धनराशि खर्च करना यह नि:संशय सराहनीय है । तथापि इस सत्कार्य की भी अपनी एक मर्यादा है ।

सोमदेव चाहते हैं कि प्रासंगिक दान देना ठीक है लेकिन यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दान से वह व्यक्ति परावलम्बी न हो । ऐसे लोगों को अर्थप्राप्ति के मार्ग दिलाना और दिलवाना भी एक प्रकारका दान ही है ।

९) इन्द्रियमनसोर्नियमानुष्ठानं तपः ।

अर्थ : इन्द्रियाँ और मन के द्वारा नियम का अनुष्ठान करना तप है ।

भावार्थ : 'धर्म' शब्द की तरह 'तप' शब्द की व्याख्या भी, विविध भारतीय सम्प्रदायों में अन्यान्य प्रकार से दी है । सोमदेव ने तप की एक बहुत ही संक्षिप्त और अर्थपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है । इन्द्रियों की अपने-अपने विषयों के प्रति जाने की लालसा अपार है । मन में निहित अन्यान्य इच्छा-आकांक्षाएँ भी असंख्य है । इन दोनों को नियंत्रण में रखने का अनुष्ठान जो करता है वह तपाचरण ही करता है ।

१०) विहिताचरणं निषिद्धपरिवर्जनं च नियमः ।

अर्थ : 'नियम' शब्द का मतलब क्या है ? विहित क्रियाओं का आचरण और निषिद्ध क्रियाओं का परिवर्जन 'नियम' कहलाता है ।

भावार्थ : नियम शब्द की एक बहुत ही धर्म-सम्प्रदाय निरपेक्ष सामान्य परिभाषा इस सूत्र में दी है । हरएक सम्प्रदाय के अन्यान्य विधिनिषेध होते हैं । उसके प्रति श्रद्धावान व्यक्ति ने, तदनुरूप विधिनिषेधों का पालन करना 'नियम' है । लेकिन नियम का मतलब सोमदेव के अनुसार इन्द्रिय और मन का नियन्त्रण है, उसे ही 'तप' कहा है ।

११) प्रत्यहं किमपि नियमेन प्रयच्छतस्तपस्यतो वा भवन्त्यवश्यं महीयांसः परे लोकाः ।

अर्थ : प्रतिदिन नियम के अनुसार कुछ न कुछ देते रहने से और तपस्या करने के उस व्यक्ति को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ परलोकी की प्राप्ति अवश्य होती है ।

भावार्थ : इस सूत्र से स्पष्ट है कि सोमदेव प्रासंगिक दान और प्रासंगिक तप को महत्त्व नहीं देते । कुछ न कुछ दान करना और इन्द्रिय-मन नियन्त्रित रखना, यह व्यक्ति के दैनन्दिन जीवनशैली का एक भाग होना चाहिए । अर्थात् दान, सत्पात्र हो और तप से मन पर काबू रखने की शक्ति आ जाय, इन दो बातों को कदापि नजरन्दाज नहीं करना चाहिए । इसी दैनन्दिन धर्माचरण से वह परलोक में श्रेष्ठ जीवन जी सकता है ।

१२) धर्मश्रुतधनानां प्रतिदिनं लवोऽपि संग्रह्यमाणो भवति समुद्रादप्यधिकः ।

अर्थ : धर्माचरण, आगमश्रवण और धन इनका थोडा-थोडा संग्रह अगर हररोज किया जाय तो वह समुद्र से भी अधिक होता है ।

भावार्थ : प्रस्तुत सूत्र पिछले सूत्र का ही अर्थविस्तार है । यद्यपि अपरिग्रह वांछनीय है तथापि शुभ आचरणरूप धर्म, नित्य धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय और साथ में ही प्रतिदिन थोडा-थोडा अर्थसंग्रह, सामान्य गृहस्थ के लिए, अन्ततक सुखपूर्वक आयु जीने का, अच्छा तरीका है । इस सूत्र में भी धर्म और श्रवण की पंक्ति में ही, धन याने अर्थ को भी समान स्थान दिया है ।

१३) अधर्मकर्मणि को नाम नोपाध्यायः पुरश्चारी वा ।

अर्थ : अधार्मिक अर्थात् पापकर्मों को प्रेरणा देनेवाले उपाध्याय अर्थात् उपदेश दाता और स्वयं पापकर्मों में अग्रेसर होनेवाले लोगों की इस दुनिया में क्या कमी है ?

भावार्थ : प्रश्नवाचक शैली सोमदेव की विशेषता है । उपदेश देने की शैली न अपनाकर वे वाचक को प्रश्न पूछकर ही अन्तर्मुख कराते हैं । सोमदेव का तात्पर्य इतना ही है कि खुद पापकर्म करनेवाले और दूसरों को पापमार्गपर आकृष्ट करनेवालों की कमी इस दुनियाँ में बिलकुल ही नहीं है । दुख की बात यह है कि सदाचरण के उपदेश से दुराचरण का उपदेश हमेशा ही अधिक लुभावना और आकर्षक होता है । सोमदेव चाहते हैं कि अर्थसंचय करते हुए भी कदापि अवांछनीय मार्ग का स्वीकार न करें ।

१४) धर्मातिक्रमाद्धनं परेऽनुभवन्ति स्वयं तु परं पापस्य भाजनं सिंह इव सिन्धुरवधात् ।
स्वैरभावानुवाद : धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन करके अगर कुटुम्ब के सौख्य के लिए अत्यधिक धन कमाया, तो उसके द्वारा मिलनेवाले सुख का अनुभव तो दूसरे व्यक्ति कर लेते हैं लेकिन पाप का भागी तो, मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला व्यक्ति अकेला ही भुगतता है । सोमदेव यह वस्तुस्थिति एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं । भूखा सिंह, हाथी का (सिन्धुर का) वध करता है । खुद के भोजन के लिए तो कुछ ही मांसखण्ड उपयोग में लाता है । उसकी क्षुधाशान्ति के बाद सियार, गीध, कौए आदि कई प्राणि-पक्षी उसी हाथी के सहारे भरपेट भोजन करते हैं । लेकिन हत्या का पातक तो पूरा सिंह को ही लगता है ।

इस दृष्टान्त से सोमदेव स्पष्ट करते हैं कि अगर व्यक्ति पाप का भागी नहीं होना चाहता तो मर्यादा से कई गुना अधिक धन पापमार्ग से नहीं कमाना चाहिए ।

१५) यः कामार्थावुपहत्य धर्ममेवोपास्ते स पक्व क्षेत्रं परित्यज्यारण्यं कृषति ।
अर्थ : जो व्यक्ति काम और अर्थ इन पुरुषार्थों को दुर्लक्षित करके सिर्फ धर्माराधना में लगा रहता है वह मानों धान्य से लहलहाता खेत छोडकर, अरण्य में जाकर खेती करता है ।
भावार्थ : सोमदेव ने यह ग्रन्थ सामान्य गृहस्थ को सामने रखकर ही लिखा है । उसके अनुसार धर्म, अर्थ और काम तीनों का स्थान, गृहस्थाचार में, समान महत्त्व का है । गृहस्थोचित सारे कर्तव्यकर्म छोडकर अगर वह केवल धर्माराधना में जुड जाता है तो उसकी व्यावहारिक जीवन यात्रा, अच्छी तरह से सफल नहीं होती ।

१६) स खलु सुधीर्योऽमुत्र सुखाविरोधेन सुखमनुभवति ।
अर्थ : जो परलोक के भावी सुखों के विरोधी न होनेवाले सुखों का आनन्द लेता है, वही सचमुच 'बुद्धिमान' कहने योग्य है ।
भावार्थ : सोमदेव का आशय यह है कि आध्यात्मिक दृष्टि से सौख्य त्याग कितना भी महत्त्वपूर्ण हो, लेकिन सामान्य आदमी सुख की आशा से ही कार्यप्रवृत्त होता है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे सुख दूसरों की खुशी छीनकर नहीं लेने चाहिए और साथ ही साथ अपने पारलौकिक कल्याण में भी बाधाजनक नहीं होने चाहिए । एक दृष्टि से सुखवादी 'चार्वाकों'का मन सोमदेव को कुछ मात्रा में ग्राह्य लगता है ।

*** नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ के धर्मसमुद्देश प्रकरण में कुल ४८ संस्कृत सूत्र हैं । उनमें से १६ सूत्र यहाँ पर ग्रथित किये हैं । धर्म से सम्बन्धित ऐसा विवेचन यहाँ पाया जाता है जो विश्व के कोई भी गृहस्थ नागरिक के लिए नैतिक मूल्यों का मार्गदर्शन करें और उसमें सद्‌गुणों का परिपोष हो जाये ।**

(ब) अर्थसमुद्देश

१७) यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः सोऽर्थः ।
अर्थ : वहीं 'अर्थ' है, जिससे सब प्रयोजनों की सिद्धि होती है ।
भावार्थ : कौटिलीय अर्थशास्त्र में जिस प्रकार 'अर्थ' का महत्त्व स्पष्ट किया है, उसी का अनुसरण करके सोमदेव भी अर्थ को सब प्रयोजनों की सिद्धि करनेवाला कहता है । आध्यात्मिक दृष्टि से भले ही अर्थ, 'परिग्रह' की कोटि में रखा जाता है तथापि दैनन्दिन व्यवहार में किसी भी छोटे-बडे प्रयोजनों की सिद्धि के लिए, अर्थ याने धन, वित्त का महत्त्व कभी भी हम नजरन्दाज नहीं कर सकते ।

१८) अलब्धलाभो लब्धपरिरक्षणं रक्षितपरिबर्द्धनं चार्थानुबन्धः ।
स्वैरभावानुवाद : अर्थ का अनुबन्ध तीन उपायों से होता है । जो अब का प्राप्त नहीं किया है उसकी प्राप्ति करना, 'अलब्धलाभ' है । प्राप्त किये हुए धन का रक्षण, 'लब्धपरिरक्षण' है । धन का केवल रक्षण न करके संवर्धन करना, 'रक्षितपरिवर्धन' है । आर्थिक समृद्धि के ये तीन महत्त्वपूर्ण उपाय है ।

१९) धर्मसमवायिनः कार्यसमवायिनश्च पुरुषास्तीर्थम् ।
अर्थ : धर्मसमवायी और कार्यसमवायी पुरुषों को 'तीर्थ' कहते हैं ।
भावार्थ : विविध सम्प्रदायों में 'तीर्थ' संकल्पना अलग-अलग तरीके से स्पष्ट की जाती है । सोमदेव उन सभी पुरुषों को तीर्थ कहते हैं जो विविध धार्मिक कृत्यों में सहायक होते हैं एवं हमारे द्वारा अंगीकृत सत्कार्य की सिद्धि में हमें मदद करते हैं ।

२०) तीर्थम् अर्थेन संभावयेत् ।
अर्थ : धर्मतीर्थरूप और कार्यतीर्थरूप पुरुषों को समय-समय पर अर्थ प्रदान से सन्तुष्ट करें ।

२१) तादात्विकमूलहरकदर्येषु नासुलभः प्रत्यवायः ।
अर्थ : तादात्विक, मूलहर और कर्दय इन तीन प्रकार के लोगों के द्वारा, सदैव अर्थनाश ही होता हैं ।

२२) यः किमपि असंचित्य उत्पन्नम् अर्थं व्ययति स तादात्विकः ।
अर्थ : खुद के द्वारा कमाये हुए धन में से कुछ भी न बचाकर जो पूरा व्यय कर देता है उसे 'तादात्विक' कहते हैं ।

२३) यः पितृपैतामहम् अर्थम् अन्यायेन भक्षयति स मूलहरः ।
अर्थ : जो व्यक्ति पिता और पितामह ने कमाया हुआ धन अन्यायपूर्वक याने व्यसनादि में भक्षण करता है उसको 'मूलहर' कहते हैं ।

२४) या भृत्यात्मपीडाभ्यामर्थं संचिनोति स कदर्यः ।
स्वैरभावानुवाद : जो भृत्यों को याने नोकर-चाकरों को और खुद को भी बहुत पीडा देकर पैसा इकट्ठा करता है असे 'कर्दय' याने कृपण, कन्जूस कहते हैं । ऐसे कृपण लोग न दूसरों को कुछ देते हैं और स्वयं भी पैसों का उपभोग नहीं लेते । परिणामवश उनका द्रव्य शासनाधिकारी एवं तस्करों द्वारा ही हरण होता है ।

*** राजनीति मुख्यतः अर्थशास्त्र पर आधारित होने के कारण नीतिवाक्यामृत के इस अर्थसमुद्देश में कुल ११ सूत्रों में अर्थ की व्याख्या, महत्त्व आदि की दृष्टि से अर्थविषयक विचार सामने रखे हैं । व्यावहारिक दृष्टि से अर्थ का महत्त्व अधोरेखित किया है । अन्त में कहा है कि, 'अर्थ की कुल तीन गतियाँ है - दान, भोग एवं नाश । अगर दान नहीं दिया और भोग नहीं लिया तो अर्थ का विनाश सुनिश्चित है ।'**

(क) कामसमुद्देश

२५) यतः सर्वेन्द्रियप्रीतिः स कामः ।
अर्थ : सभी इन्द्रियों द्वारा उनके विषयों का आस्वाद लेने से, विषयों के प्रति जो अत्यधिक प्रीति या आकर्षण निर्माण होता है उसको 'काम' कहते हैं ।

२६) धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत ततः सुखी स्यात् ।

अर्थ : सामान्य गृहस्थ के लिए चाहिए कि वह धर्म और अर्थ को बाधक न ठरे इस प्रकार काम का सेवन करें ताकि उसे सुख की प्राप्ति हो ।

भावार्थ : सोमदेव के इस सूत्र पर कौटिल्य द्वारा रचित सूत्र की छाया स्पष्टत: से दिखायी देती है । धर्म और अर्थ के समान कामपुरुषार्थ का भी महत्त्व सामान्य व्यक्ति के लिए अनन्यसाधारण है । अगर जीवन में तनिक भी सुख न हो तो भला कौन जीना चाहेगा । लेकिन नैतिक दृष्टि से यह ध्यान में रखना चाहिए कि वैयक्तिक सुख की अभिलाषा में, धर्माचरण और अर्थ का विनाश न हो ।

२७) समं वा त्रिवर्गं सेवेत ।

अर्थ : अथवा धर्म-अर्थ-काम इन तीन पुरुषार्थों का समभाग से सेवन करें ।

भावार्थ : सोमदेव का आशय है कि इन तीनों में समतोल रखना बहुत ही दु:साध्य चीज है । धर्म का अतिरेक हो तो अर्थ-काम की हानि होगी । सदैव अर्थप्राप्ति की चिन्ता में डूबे तो धर्म से और सुख से वन्चित रहेंगे और अगर कामपुरुषार्थ की मात्रा अतिरिक्त हुई तो अर्थविनाश के साथ-साथ ऐहिक-पारलौकिक अकल्याण भी होगा । अत: तीनों पुरुषार्थों का विवेकपूर्वक सेवन कोई आसान बात नहीं है ।

२८) न अजितेन्द्रियाणां कापि कार्यसिद्धि: अस्ति ।

अर्थ : अगर इन्द्रियों पर काबू न रखे तो किसी भी प्रकार की कार्यसिद्धि नहीं हो सकती ।

भावार्थ : सोमदेव का कहना है कि 'इन्द्रियजय की आवश्यकता सिर्फ आध्यात्मिक क्षेत्र में ही है', यह बात सत्य नहीं है । सामान्य जीवन जीने के लिए भी इन्द्रियों पर काबू रखने की नितान्त आवश्यकता है । नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ में राजा, अमात्य, मन्त्री, श्रेष्ठी और सामान्य नागरिक सबके लिए जितेन्द्रिय होने की आवश्यकता बतायी है । अगर इन्द्रियों के लगाम छूट गये तो धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थों की हानि ही होगी ।

२९) अर्थशास्त्राध्ययनं वा ।

अर्थ : राष्ट्र के अथवा राज्य के हरएक नागरिक घटक को चाहिए कि, वह 'अर्थशास्त्र' का अध्ययन करें ।

भावार्थ : यहा 'अर्थशास्त्र' का मतलब है संविधान, शासन-व्यवहार, राजनीति, कर-प्रणालि, अपराध और दण्डव्यवस्था एवं आर्थिक व्यवहार । हर सजग नागरिक का कर्तव्य है कि वह उपरि निर्दिष्ट वस्तुस्थिति को समझ ले और जानबूझकर दक्षता से व्यवहार करें ।

३०) न तस्य धनं धर्म: शरीरं वा यस्य अस्ति स्त्रीषु अत्यासवित: ।

अर्थ : जिस पुरुष के मन में स्त्रियों के प्रति अतीव अभिलाषा है उसकी धनहानि, धर्महानि और शारीरिक हानि भी होती है ।

भावार्थ : यद्यपि इस सूत्र में स्त्रीविषयक आसक्ति का उल्लेख है तथापि सोमदेव चाहते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों काम का सेवन मर्यादा में रहकर ही करें । सोमदेव दसवीं शताब्दि के होने के बावजूद भी 'एकपत्नीव्रत' और 'एकपतिव्रत' का पुरस्कार करते हैं ।

३१) धर्मार्थकामानां युगपत् समवाये पूर्वः पूर्वो गरीयान् ।

अर्थ : धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ अगर एक समय में उपस्थित हो तो क्रम से पूर्व-पूर्व का आश्रय लेना श्रेयस्कर है ।

भावार्थ : इस सूत्र में सोमदेव नैतिक मूल्यों का एक सामान्य क्रम बतलाते हैं । धर्मविषयक कार्य प्रथमता से करें । उसके बाद अर्थसाधक कार्य करें और कामनाओं की पूर्ति का आनन्द तीसरे क्रम पर ही रखें ।

३२) काल-असहत्वे पुनः अर्थः एव ।

अर्थ : कालहरण के कारण अगर अर्थप्राप्ति में बाधा आ सकती है तो, इस विशिष्ट परिस्थिति में पहले-पहले अर्थार्जन ही करना चाहिए ।

भावार्थ : सोमदेव ने यद्यपि पूर्वसूत्र में धर्म-अर्थ-काम का, सामान्य क्रम बताया है तथापि इस सूत्र में अपवादरूप विशेष स्थिति का, अर्थशास्त्र की दृष्अि से वर्णन किया है । अगर हम धार्मिक क्रियाओं में व्यस्त रहने के कारण, अर्थोपार्जन का सुयोग्य अवसर खो दे तो, वह अवसर बार-बार नहीं आनेवाला है । धर्म के लिए कमायें और बाद में यथोचित अवसर पर, धर्म के हेतु उसका व्यय भी करें ।

*** कामसमुद्देश में कुल १५ सूत्र हैं । गृहस्थ की दृष्टि से कामपुरुषार्थ का महत्त्व कहना, इस समुद्देश का तात्पर्य है । काम सेवन करनेवाले स्त्री-पुरुष को इन्द्रियों पर काबू रखने की आवश्यकता कही है । अर्थ की और अर्थशास्त्र के अध्ययन की महत्ता इस समुद्देश में प्रतिपादित है ।**

****

स्वाध्याय

अ) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) सोमदेवकृत संस्कृत ग्रन्थ का नाम एवं काल लिखिए ।
२) भारतीय परम्परा में चार पुरुषार्थ कौनसे हैं ?
३) 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' का पर्यायी नाम क्या है ?
४) नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ कौनसे तीन पुरुषार्थों से सम्बन्धित हैं ?
५) प्रथम गाथा में किसको वन्दन किया है ?
६) सर्वश्रेष्ठ आचरण किसे कहा है ? (सूत्र ४)
७) त्रिविध पात्र कौनसे हैं ? (सूत्र ७)
८) सोमदेव ने 'तप'की कौनसी व्याख्या दी है ? (सूत्र ९)
९) कौनसी दो चीजों को, दैनन्दिन जीवनशैली का भाग बनाना चाहिए ? (सूत्र ११)
१०) सिंह और हाथी का दृष्टान्त चार-पाँच वाक्यों में स्पष्ट कीजिए ? (सूत्र १४)
११) सामान्य गृहस्थ ने किस प्रकार सुख की प्राप्ति करनी चाहिए ? (सूत्र १६)
१२) 'अर्थ' शब्द की सोमदेवकृत परिभाषा लिखिए ।
१३) सोमदेव 'तीर्थ' किसे कहते हैं ? (सूत्र १९)
१४) 'काम' शब्द की सोमदेवकृत परिभाषा लिखिए ।
१५) 'समं वा त्रिवर्गं सेवत् ।' इस सूत्र का अर्थ लिखिए । (सूत्र २७)
१६) प्रत्येक नागरिक ने अर्थशास्त्र का अध्ययन क्यों करना चाहिए ? (सूत्र २९)
१७) अर्थप्राप्ति के अवसर का लाभ तत्काल क्यों उठाना चाहिए ? (सूत्र ३२)

ब) बडे प्रश्न (लगभग पन्द्रह पंक्ति)

१) ‘धर्मसमुद्देश’ के कौनसे विचार नीतिमूल्यों पर आधारित हैं ?

२) ‘अर्थसमुद्देश’ में ‘तादात्विक’, ‘मूलहर’ और ‘कदर्य’ किन्हें कहा है ? अर्थसमुद्देश का तात्पर्य लिखिए ।

****

प्राकृत–व्याकरण–विभाग

पाठ ६
प्राकृत भाषा की शब्दसम्पत्ति

प्रस्तावना :

हमारे भारत देश में प्राचीन काल से संस्कृत और प्राकृत ये दोनों भाषाएँ प्रचलित थी । संस्कृत भाषा प्रमुखता से ज्ञान की भाषा एवं उच्चवर्णियों के व्यवहार की भाषा होती थी । संस्कृत में भी भाषा के दो स्तर दिखाई देते हैं । ऋग्वेद आदि वेदों में प्रयुक्त संस्कृत को 'वैदिक संस्कृत' कहते है । संस्कृत के सभी अभिजात (classical) महाकाव्य, नाटक आदि जिस संस्कृत भाषा में लिखे हैं उस भाषा को 'लौकिक संस्कृत' कहते हैं ।

जिस समय संस्कृत भाषा प्रचलित थी, उसी समय आम समाज में प्रदेश एवं व्यवसायों के अनुसार बोलचाल की भाषाएँ प्रचलित थी । भारत एक विशालकाय देश होने के नाते इन बोलचाल की भाषाओं में विविधता थी । इन सभी भाषाओं के समूह को मिलकर भाषाविदों ने 'प्राकृत' नाम दिया । इसका मतलब 'प्राकृत' यह संज्ञा किसी एक भाषा की नहीं है । प्रकृति याने स्वभाव को प्राधान्य देनेवाली अनेक बोलीभाषाएँ प्राकृत में समाविष्ट हैं ।

मगध याने बिहार के आसपास के प्रदेश में प्रचलित जो प्राचीन भाषा थी उसका नाम था 'मागधी' । भ. महावीर द्वारा प्रयुक्त 'अर्धमागधी' और भ. बुद्ध द्वारा प्रयुक्त 'पालि' ये दोनों भाषाएँ मागधी भाषा के दो उपप्रकार हैं । जैन संघ में जब श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्प्रदाय उद्भूत हुए तब श्वेताम्बर आचार्यों ने 'महाराष्ट्री' नामक भाषा का आश्रय लेकर ग्रन्थरचना की । उनकी महाराष्ट्री, अर्धमागधी से प्रभावित होने के कारण 'जैन महाराष्ट्री' नाम से विख्यात हुई । दिगम्बर आचार्यों ने उनके ग्रन्थ लेखन के लिए 'शौरसेनी' नामक भाषा का प्रयोग किया । सामान्य शौरसेनी से थोडी अलग होने के कारण अभ्यासकों ने इस भाषा का नामकरण 'जैन शौरसेनी' किया । लगभग दसवीं सदी के आसपास सभी प्राकृत भाषाओं में एक बदलाव आया । उस भाषा समूह को 'अपभ्रंश' भाषा कहा जाने लगा । लगभग पंद्रहवीं सदी के आसपास हमारी आधुनिक प्राकृत बोलीभाषाएँ प्रचार में आने लगी । अपभ्रंश भाषाओं से ही इनकी निर्मिति हुई । आज भी हम हिंदी, मराठी, मारवाडी, गुजराती, राजस्थानी, बांगला आदि भाषाएँ बोलते हैं, वे आधुनिक प्राकृत भाषाएँ ही हैं ।

उपरोक्त सभी याने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाएँ 'आर्य भारतीय' भाषाएँ हैं । इसके अलावा भारत के दक्षिणी भाग में बोली जानेवाली कानडी, तेलगू, तमीळ और मल्याळम ये चार मुख्य भाषाएँ एवं उनकी उपभाषाएँ 'द्राविडी' नाम से जानी जाती हैं । भारत के कई दुर्गम प्रदेशों में जो आदिवासी भाषाएँ बोली जाती हैं उनकी शब्दसम्पत्ति (vocabulary) तथा व्याकरण (grammar) आर्य एवं द्राविडी भाषाओं से अलग प्रकार का है । भारत वर्ष की समग्र भाषाओं का स्थूल स्वरूप इस प्रकार विविधतापूर्ण है ।

प्राकृत के शब्दसम्पत्ति का वर्गीकरण :

प्राकृत भाषा की शब्दसम्पत्ति का वर्गीकरण 'तत्सम शब्द', 'तद्भव शब्द' और 'देश्य शब्द' इस प्रकार से किया जाता है । तत् (तद्) - इस शब्द का अर्थ है - संस्कृत के समान । जो शब्द पूर्णत: संस्कृत के समान हैं उन्हें 'तत्सम' कहते हैं । जो शब्द संस्कृत शब्द से कुछ अंश में समान हैं और कुछ अंश में समान नहीं हैं उन्हें 'तद्भव' कहते हैं । 'देशी' या 'देश्य' शब्द वे होते हैं जिनका संबंध संस्कृत शब्दों से बिलकुल ही नहीं होता । वे शब्द बोलचाल के नित्य व्यवहार में प्रचलित होते हैं लेकिन संस्कृत के साथ किसी भी प्रकार मेल नहीं खाते । सभी प्रकार की प्राकृत भाषाओं में तत्सम, तद्भव और देश्य ये तीनों प्रकार के शब्द पाये जाते हैं ।

१) तत्सम शब्द :

संस्कृत–प्राकृत समान (तत्सम शब्द)	**हिंदी अर्थ**
अहं	मैं
अंजलि	जुडे हुए हाथ
आगम	मूल ग्रन्थ, शास्त्र
इच्छा	इच्छा
उत्तम	उत्तम
ओंकार	ओंकार
किंकर	नोकर
गण	समूह
घंटा	घंटा
चित्त	चित्त
छल	कपट
जल	पानी
तिमिर	अंधकार
धवल	शुभ्र
नीर	पानी
परिमल	सुगंध
बहु	बहुत
भार	बोझ
मरण	मृत्यु
रस	रस
लव	अंश
वारि	पानी
सुंदर	सुंदर
हरि	विष्णु, सिंह
गच्छंति	जाते हैं ।
नमंति	नमन करते हैं ।
हरंति	हरण करते हैं ।

२) तद्भव शब्द :

प्राकृत तद्भव शब्द	**संस्कृत शब्द**	**हिंदी अर्थ**
अग्ग	अग्र	प्रथम, मुख्य
आरिय	आर्य	आदरणीय, कुलीन
इट्ठ	इष्ट	प्रिय
ईसा	ईर्षा	मत्सर
उग्गम	उद्गम	उत्पत्ति
कसिण	कृष्ण	काला
खज्जूर	खर्जूर	खजूर
गय	गज	हाथी

घम्म	घर्म	पसीना
चक्क	चक्र	चाक, पहिया
छोह	क्षोभ	गुस्सा
जक्ख	यक्ष	यक्ष
झाण	ध्यान	ध्यान
डंस	दंश	दंश
णाह	नाथ	नाथ
तियस	त्रिदश	देव
दिट्ठ	दृष्ट	देखा हुआ
धम्मिअ	धार्मिक	धार्मिक
पच्छा	पश्चात्	पीछे
फंस	स्पर्श	स्पर्श
बोर	बदर	बेर
भारिया	भार्या	पत्नी
मेह	मेघ	मेघ, बादल
रण्ण	अरण्य	अरण्य
लेस	लेश	अंश
सेस	शेष	बाकी
हियय	हृदय	हृदय
हवइ	भवति	होता है ।
पियइ/पिवइ	पिबति	पीता है ।
पुच्छइ	पृच्छति	पूछता है ।
होहिइ	भविष्यति	होगा ।

३) देशी या देश्य शब्द :

प्राकृत देशी शब्द	**हिंदी अर्थ**
इराव	हाथी
उंदुर	चूहा (मराठी - उंदीर)
ऊसअ	उपधान, तकिया
कंदोट्ट	कमल
कोड्ड	कुतूहल (मराठी - कोड-कौतुक)
खिडक्किया	खिडकी, झरोखा
गोस	सुबह
घढ	गढ, स्तूप
चंग	अच्छा (मराठी - चांगला)
चिक्खल्ल	कीचड (मराठी - चिखल)
चुक्क	चूकना
चोप्पड	चुपडना, मलना (मराठी - चोपडणे)
छिव	छूना (मराठी - शिवणे)
छोयर	छोकरा

जच्च	पुरुष
झडप्प	शीघ्र (मराठी - झडप)
डगल	ढेला (मराठी - ढेकूळ)
डाल	शाखा, डाली
तुप्प	घी (मराठी - तूप)
दद्दर	दादर, सीढी
दाढिया	दाढी
देक्ख	देखना
पोच्चड	नि:सार (मराठी - पोचट)
पोट्ट	पेट (मराठी - पोट)
बइल्ल	बैल
बप्प	बाप, पिता
बाउल्ल	गुड्डा (मराठी - बाहुला)
बिट्ट	पुत्र, बेटा
रोट्ट	रोटी
लंचा	घूस (मराठी - लाच)

स्वाध्याय

इस पाठ में तत्सम, तद्भव और देशी, ये शब्द प्रचुर मात्रा में दिये हैं । वे सब ध्यानपूर्वक अर्थसहित पढिए ।

१) परीक्षा में इन्हीं में से लगभग दस-बारह शब्दों का एक संग्रह दिया जायेगा । विद्यार्थी से अपेक्षित है कि वह उस शब्दसंग्रह का तत्सम, तद्भव और देशी शब्दों में वर्गीकरण करें ।

अथवा

२) 'तत्सम, तद्भव और देश्य शब्दों के प्रत्येकी पाँच-पाँच उदाहरण लिखिए' । - इस प्रकार का प्रश्न भी आ सकता है । **(गुण लगभग ४)**

****

पाठ ७
प्राकृत में स्वरपरिवर्तन तथा व्यंजनपरिवर्तन

अ) प्राकृत में स्वरपरिवर्तन :

(सामान्य नियम)

प्राकृत भाषाएँ प्राचीन काल से बोलीभाषाएँ थी । सबसे प्राचीन प्राचीन प्राकृत भाषा 'अर्धमागधी' मानी जाती है । उसके बाद 'शौरसेनी' एवं 'महाराष्ट्री' भाषा के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं । बोलचाल की भाषाएँ जब ग्रन्थलेखन की भाषाएँ बनीं, तब उच्चारण तथा व्याकरण के नियम बनने लगे । इन नियमों का आधार प्रमाणित संस्कृत भाषा थी । 'वररुचि' तथा 'हेमचन्द्र' ने प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखा । उसके आधारपर, इस पाठ में स्वर-परिवर्तन के नियम दिये हैं ।

* प्राकृत में सामान्यत: निम्नलिखित स्वर (vowels) पाये जाते हैं । - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ ।

* संस्कृत में पाये जानेवाले निम्नलिखित स्वर प्राकृत में नहीं हैं । - ऋ , ऌ , ऐ , औ , अ: ।

* प्राकृत में नहीं पाये जानेवाले उपरोक्त स्वरों का प्राकृत में सुलभीकरण (simplification) होता हैं । इस पाठ में प्राकृत में सामान्यत: पाये जानेवाले स्वर-परिवर्तन दिये हैं ।

१) 'ऐ' स्वर के स्थान में 'ए' तथा 'अइ' का उपयोग पाया जाता है ।

कैलास - केलास, कइलास	कैकयी - केगई
दैव - देव्व, दइव	मैत्री - मेत्ती (मित्ती)
दैवत - देवय	वैशाली - वेसाली
वैकुंठ - वेगुंठ, वइकुंठ	वैरि - वेरि, वइरि
वैद्य - वेज्ज	वैश्य - वइस्स
सैन्य - सेन्न, सइन्न	शैल - सेल

२) 'औ' स्वर के स्थान में 'ओ' तथा 'अउ' का उपयोग पाया जाता है ।

औषध - ओसह	कौतुक - कोउय
कौमुदी - कोमुई	कौरव - कउरव
गौरी - गोरी, गउरी	गौरव - गउरव
गौतम - गोयम	पौर - पोर, पउर
यौवन - जोव्वण	पौरुष - पउरिस

३) प्राकृत में 'विसर्ग' के स्थान पर 'ओ' पाया जाता है ।

राम: - रामो	देव: - देवो
महावीर: - महावीरो	गणेश: - गणेसो
वाणर: - वाणरो	सूर्य: - सूरिओ

४) 'ऋ' स्वर के स्थान में प्राकृत भाषा में बहुत परिवर्तन पाये जाते हैं । 'ऋ' का रूपांतर प्राकृत में 'अ', 'इ', 'उ' तथा 'रि' में होता है । प्रत्येक के उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से पाये जाते हैं ।

I) ऋ = अ

कृत – कय
घृत – घय
तृष्णा – तण्हा
तृण – तण
मृदु – मउ
मृत – मय
मृत्यु – मच्चु

II) ऋ = इ

ऋषि – इसि
कृमि – किमि
कृपा – किवा
कृपण – किविण
कृश – किस
दृढ – दिढ
गृह – गिह
मृग – मिग
नृप – निव
शृंगार – सिंगार
शृगाल – सियाल
हृदय – हियय

III) ऋ = उ

ऋतु – उउ
जामातृ – जामाउ
पितृ – पिउ
मृषा – मुसा
पृथ्वी – पुढवी
भ्रातृ – भाउ
वृद्ध – वुड्ढ
मातृ – माउ

IV) ऋ = रि

ऋषभ – रिसह (उसह)
ऋण – रिण
ऋषि – रिसि
ऋद्धि – रिद्धि

स्वाध्याय

१) निम्नलिखित स्वर–परिवर्तनों के दो–दो उदाहरण लिखिए ।

स्वर–परिवर्तन **उदाहरण**

१) 'ऐ' की जगह 'ए' ---
२) 'ऐ' की जगह 'अइ' ---
३) 'औ' की जगह 'ओ' ---
४) 'औ' की जगह 'अउ' ---
५) विसर्ग की जगह 'ओ' ---
६) 'ऋ' की जगह 'अ' ---
७) 'ऋ' की जगह 'इ' ---
८) 'ऋ' की जगह 'उ' ---
९) 'ऋ' की जगह 'रि' ---

२) इस पाठ में अंतर्भूत संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूप लिखिए ।

उदा. सैन्य - सेन्न ; पौर - पोर, पउर ; घृत - घय ; ऋषभ - रिसह इ.

****

ब) प्राकृत में व्यंजनपरिवर्तन

भाषा स्वर और व्यंजनों से बनती है । 'प्राकृत' नाम की कोई 'एक' भाषा नहीं है । वह भाषाओं का समूह है । भारत की सबसे प्राचीन ज्ञात बोलचाल की भाषा 'अर्धमागधी' थी । शौरसेनी और महाराष्ट्री, ये तत्कालीन भारत की दो प्रमुख बोलीभाषाएँ थी । जैन आचार्यों ने उनमें समयोचित परिवर्तन लाकर 'जैन महाराष्ट्री' और 'जैन शौरसेनी' में कई ग्रन्थ लिखें । ईसवी की आठवीं शताब्दी से 'अपभ्रंश' भाषाएँ प्रचार में आने लगी । हेमचन्द्र नामक जैन आचार्य ने प्राकृत भाषाओं का लिखा हुआ व्याकरण सबसे प्रमाणित माना जाता है ।

प्रस्तुत पाठ में सामान्यत: प्राकृत में पाये जानेवाले व्यंजन (constants) और संस्कृत की तुलना में, उसमें पाये जानेवाले 'परिवर्तन' याने बदल संक्षेप में दिये हैं ।

प्राकृत के व्यंजन (constants)

उच्चारण के प्रकार	**वर्ग**	**व्यंजन**
कंठ्य (velars)	क	क्, ख्, ग्, घ्, ङ्
तालव्य (palatals)	च	च्, छ्, ज्, झ्, ञ्
मूर्धन्य (cerebrals)	ट	ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्
दन्त्य (dentals)	त	त्, थ्, द्, ध्, न्
ओष्ठ्य (labials)	प	प्, फ्, ब्, भ्, म्
	अन्तस्थ वर्ण	य्, र्, ल्, व्
	ऊष्म वर्ण	स्
	महाप्राण	ह्

१) वर्गीय व्यंजनों के पाँच गुट हैं । उन्हें 'क' वर्ग, 'च' वर्ग, 'ट' वर्ग, 'त' वर्ग और 'प' वर्ग कहते हैं । उनमें से प्रत्येक के आरम्भ के दो वर्णों को 'कठोर वर्ण' कहते हैं जैसे कि - क्-ख्, च्-छ्, ट्-ठ्, त्-थ् और प्-फ् । बाद के दो वर्णों को 'मृदु व्यंजन' कहते हैं जैसे कि ग्-घ्, ज्-झ्, ड्-ढ्, द्-ध्, ब्-भ् ।

२) पाँचों वर्गों के अन्तिम व्यंजनों का उच्चारण 'नाक' से होता है । इसलिए उनको 'अनुनासिक' (nasal) कहते हैं । ङ्, ञ्, ण्, न्, म् ये पाँच व्यंजन 'अनुनासिक' व्यंजन हैं ।

कौनकौनसे व्यंजन प्राकृत में नहीं है ?

१) प्राकृत में और खास कर, अर्धमागधी और महाराष्ट्री में , 'श' और 'ष' ये व्यंजन नहीं हैं । उन दोनों के बदले 'स' का उपयोग पाया जाता है ।

शत = सय	कषाय = कसाय
कृषि = किसि	भूषण = भूसण
शाखा = साहा	शशिन् = ससि
शमी = समी	मूषक = मूसग, मूसय

२) प्राकृत में ‘ळ’, ‘क्ष’, ‘ज्ञ’ ये तीन व्यंजन नहीं पाये जाते । मराठी में ये तीनों पाये जाते हैं ।

३) प्राकृत में व्यंजनों का उपयोग ‘संयुक्त’ और ‘असंयुक्त’ दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है । उदाहरणार्थ ‘खलु’ शब्द में ‘ख’ व्यंजन का उपयोग असंयुक्त है । परन्तु ‘दु:ख’ में ‘ख’ शब्द का उपयोग संयुक्त रूप में है । संयुक्त व्यंजनों को बोलीभाषा में ‘जोडाक्षर’ भी कहते हैं ।

४) ‘व्यंजन’ शब्द के कभी प्रारम्भ में, कभी मध्य में एवं कभी अन्त में भी आ सकता है । उनको क्रम से साद्य-मध्य और अन्त्य व्यंजन कहते हैं ।

अ) आद्य व्यंजनों के परिवर्तन :

१) क → ख (शब्द के आरम्भ का ‘क’ कभी-कभी ‘ख’ में परिवर्तित होता है ।)
कील = खील (मराठी = खिळा)   कर्पर = खप्पर (खापर)   कुब्ज = खुज्ज (खुजा)

२) ग → घ (शब्द के आरम्भ का ‘ग’ कभी-कभी ‘घ’ में परिवर्तित होता है ।)
गृह = घर, गृहिणी = घरिणी

३) च → त (शब्द के आरम्भ का ‘च’ कभी-कभी ‘त’ में परिवर्तित होता है ।)
चिकित्सक = तिगिच्छग

४) ज → झ (शब्द के आरम्भ का ‘ज’ कभी-कभी ‘झ’ में परिवर्तित होता है ।)
जटिल = झडिल

५) त → च, छ (शब्द के आरम्भ का ‘त’ कभी-कभी ‘च’ या ‘छ’ में परिवर्तित होता है ।)
तुच्छ = चुच्छ, छुच्छ   त्यज् = चय

६) त → ट (शब्द के आरम्भ का ‘त’ कभी-कभी ‘ट’ में परिवर्तित होता है ।)
तगर = टगर

७) द → ड (शब्द के आरम्भ का ‘द’ कभी-कभी ‘ड’ में परिवर्तित होता है ।)
दाह = डाह   दंश = डंस

८) न → ण (शब्द के आरम्भ का ‘न’ कभी-कभी ‘ण’ में परिवर्तित होता है ।)
नदी = णई   नर = णर   नमो = णमो

९) प → फ (शब्द के आरम्भ का ‘प’ कभी-कभी ‘फ’ में परिवर्तित होता है ।)
पुरुष = फरुस   परशु = फरसु
पुट = फुड   परिघ = फलिह

१०) य → ज (शब्द के आरम्भ का ‘य’ कभी-कभी ‘ज’ में परिवर्तित होता है ।)

यात्रा = जत्ता	योगी = जोगी	यशोदा = जसोदा
यथा = जहा	यम = जम	यमुना = जमुणा
यादव = जायव	यदा = जया	

११) य → त, ल (शब्द के आरम्भ का 'य' कभी-कभी 'त' या 'ल' में परिवर्तित होता है ।)

युष्मद् = तुम्हे	यष्टि = लट्ठि

१२) श, ष, स → छ (शब्द के आरम्भ के 'श, ष, स' कभी-कभी 'छ' में परिवर्तित होता है ।)

शाव = छाव	षण्मुख : छम्मुह
सुधा = छुहा	षष्ठ = छट्ठ

आ) अनादि असंयुक्त व्यंजनों के परिवर्तन :

१) 'य' श्रुति का नियम - 'क-ग-च-ज-त-द' इन अनादि व्यंजनों का कभी-कभी लोप होकर, उसकी जगह 'य' का उपयोग किया जाता है । इसी को 'य' श्रुति का नियम कहते हैं ।

क → य	कनक = कणय	जनक = जणय
	सकल = सयल	उदक = उयय
	नरक = नरय	लोक = लोय
ग → य	सागर = सायर	मगर = मयर
	नगर = नयर	मृग = मिय
	आगर = आयर	
च → य	आचार = आयार	कवच = कवय
	वचन = वयण	उपचार = उवयार
	नीच = नीय	काच = काय
ज → य	सुजन = सुयण	पूजा = पूया
	गज = गय	
त → य	शीतल = सीयल	गीत = गीय
	मारुत = मारुय	सीता = सीया
	कृत = कय	शीत = सीय
द → य	पाद = पाय	हृदय = हियय
	वेद = वेय	प्रसाद = पसाय
	सदा = सया	गदा = गया

२) अनादि असंयुक्त व्यंजनों का कभी-कभी लोप होकर, उसके बदले 'इ', 'उ' और 'ए' इन स्वरों का उपयोग किया जाता है ।

इ :	कोकिला = कोइला	जाति = जाइ
	वसुमती = वसुमई	वनराजि = वणराइ
उ :	रिपु = रिउ	वायु = वाउ
	ऋतु = उउ	नूपुर = नेउर

ए : आदेश = आएस उपदेश = उवएस

३) 'ख-घ-थ-ध-फ-भ' ये व्यंजन जब अनादि और असंयुक्त होते हैं तब उनका कभी-कभी लोप होकर, उसके बदले 'ह' का उपयोग किया जाता है । इसे 'ह-श्रुति' का नियम कहते हैं ।

ख → ह	मेखला = मेहला	नख = नह
	सुख = सुह	शाखा = साहा
	सखी = सही	शिखर = सिहर
घ → ह	मेघ = मेह	लघु = लहु
	राघव = राहव	
थ → ह	नाथ = नाह	यथा = जहा
	तथा = तहा	
ध → ह	मधु = महु	बधिर = बहिर
	दधि = दहि	साधु = साहु
	विधवा = विहवा	मगध = मगह
फ → ह	विफल = विहल	सफल = सहल
	मुक्ताफल = मुत्ताहल	
भ → ह	स्वभाव = सहाव	लोभ = लोह
	वल्लभ = वल्लह	शुभ = सुह
	सुभट = सुभड	नभ = नह

४) 'ठ' और 'थ' ये व्यंजन जब अनादि असंयुक्त होते हैं तब उनका कभी-कभी लोप होकर, उसके बदले 'ढ' का उपयोग किया जाता है ।

ठ → ढ	पाठ = पाढ	पीठ = पीढ
	कठिन = कढिण	
थ → ढ	पृथिवी = पुढवी	प्रथम = पढम
	शिथिल = सिढिल	

५) 'ष' और 'स' ये व्यंजन जब अनादि असंयुक्त होते हैं तब उनका कभी-कभी लोप होकर, उसके बदले 'ह' का उपयोग किया जाता है ।

ष → ह	पाषाण = पाहाण	षोडष = सोलह
स → ह	दिवस = दियह, दिवह	

टीप : इस पाठ में निर्दिष्ट व्यंजन-परिवर्तन के अतिरिक्त कुछ अनियमित व्यंजन-परिवर्तन भी प्राकृत में पाये जाते हैं ।

स्वाध्याय

'य-श्रुति का नियम' और 'ह-श्रुति का नियम' इन दोनों नियमों में संस्कृत-प्राकृत के जो उदाहरण दिये हैं, वे कंठस्थ कीजिए । इसी में से कुछ उदाहरण परीक्षा में पूछे जायेंगे ।

नमूने के तौरपर प्रश्न :

१) व्यंजन-परिवर्तन ध्यान में रखकर, निम्नलिखित प्राकृत शब्दों के संस्कृत रूप लिखिए ।
जणय, आयार, हियय, मगह, वल्लह

२) व्यंजन-परिवर्तन ध्यान में रखकर, निम्नलिखित संस्कृत शब्दों के प्राकृत रूप लिखिए ।
नरक, सीता, मेखला, राघव, शुभ

****

पाठ ८
नाम–विभक्ति के प्रत्यय

अकारान्त पुं. 'वीर' शब्द

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
प्रथमा (Nominative)	वीरो, वीरे (एक देव)	वीरा (अनेक देव)
द्वितीया (Accusative)	वीरं (वीर को)	वीरे, वीरा (वीरों को)
तृतीया (Instrumental)	वीरेण, वीरेणं (वीर ने)	वीरेहि, वीरेहिं (वीरों ने)
पंचमी (Ablative)	वीरा, वीराओ (वीर से)	वीरेहिंतो (वीरों से)
षष्ठी (Genitive)	वीरस्स (वीर का)	वीराण, वीराणं (वीरों का)
सप्तमी (Locative)	वीरे, वीरंसि, वीरम्मि (वीर में, वीर पर)	वीरेसु, वीरेसुं (वीरों में,वीरों पर)
संबोधन (Vocative)	वीर (हे वीर !)	वीरा (हे वीरों !)

आकारान्त स्त्री. 'गंगा' शब्द

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
प्रथमा (Nominative)	गंगा (एक गंगा)	गंगा, गंगाओ (अनेक गंगा)
द्वितीया (Accusative)	गंगं (गंगा को)	गंगा, गंगाओ (गंगाओं को)
तृतीया (Instrumental)	गंगाए (गंगा ने)	गंगाहि, गंगाहिं (गंगाओं ने)
पंचमी (Ablative)	गंगाए, गंगाओ (गंगा से)	गंगाहिंतो (गंगाओं से)
षष्ठी (Genitive)	गंगाए (गंगा का)	गंगाण, गंगाणं (गंगाओं का)
सप्तमी (Locative)	गंगाए (गंगा में)	गंगासु, गंगासुं (गंगाओं में)
संबोधन (Vocative)	गंगा, गंगे (हे गंगा !)	गंगा, गंगाओ (हे गंगाओं !)

अकारान्त नपुं. 'वण' शब्द

विभक्ति	एकवचन	अनेकवचन
प्रथमा	वणं	वणाइं, वणाणि
(Nominative)	(एक वन)	(अनेक वन)
द्वितीया	वणं	वणाइं, वणाणि
(Accusative)	(वन को)	(वनों को)
तृतीया	वणेण, वणेणं	वणेहि, वणेहिं
(Instrumental)	(वन ने)	(वनों ने)
पंचमी	वणा, वणाओ	वणेहिंतो
(Ablative)	(वन से)	(वनों से)
षष्ठी	वणस्स	वणाण, वणाणं
(Genitive)	(वन का)	(वनों का)
सप्तमी	वणे, वणंसि, वणम्मि	वणेसु, वणेसुं
(Locative)	(वन में, वन पर)	(वनों में, वनों पर)
संबोधन	वण	वणाइं, वणाणि
(Vocative)	(हे वन !)	(हे वनों !)

****

पाठ ९

क्रियापद के प्रत्यय (Verb-declension)

वर्तमानकाल (Present-Tense)

वर्तमानकाल के प्रत्यय

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	मि	मो
द्वितीय पुरुष	सि	ह
तृतीय पुरुष	इ	अंति

सर्वनामसहित वर्तमानकाल के क्रियारूप

धातु (क्रियापद) : पुच्छ (पूछना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	(अहं) पुच्छामि ।	(अम्हे, वयं) पुच्छामो ।
द्वितीय पुरुष	(तुमं) पुच्छसि ।	(तुम्हे) पुच्छह ।
तृतीय पुरुष	(सो) पुच्छइ ।	(ते) पुच्छंति ।

क्रियापद : कर (करे) (करना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	(अहं) करेमि ।	(अम्हे, वयं) करेमो ।
द्वितीय पुरुष	(तुमं) करेसि ।	(तुम्हे) करेह ।
तृतीय पुरुष	(सो) करेइ ।	(ते) करेंति ।

भूतकाल (Past-Tense)

भूतकाल के प्रत्यय

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	इत्था	इंसु
द्वितीय पुरुष	इत्था	इंसु
तृतीय पुरुष	इत्था	इंसु

सर्वनामसहित भूतकाल के क्रियापद

क्रियापद : पास (देखना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	(अहं) पासित्था । (मैंने देखा ।)	(अम्हे) पासिंसु । (हमने देखा ।)
द्वितीय पुरुष	(तुमं) पासित्था । (तूने/तुमने देखा ।)	(तुम्हे) पासिंसु । (तुमने/सबने देखा ।)

तृतीय पुरुष	(सा) पासित्था । (उसने देखा ।)	(ते) पासिंसु । (उन्होंने देखा ।)

भविष्यकाल (Future-Tense**)**

(१) भविष्यकाल के प्रत्यय

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	इस्सामि, इस्सं	इस्सामो
द्वितीय पुरुष	इस्ससि	इस्सह
तृतीय पुरुष	इस्सइ	इस्संति

सर्वनामसहित भविष्यकाल के क्रियारूप

क्रियापद : भण (बोलना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	(अहं) भणिस्सामि । (अहं) भणिस्सं । (मैं बोलूँगा ।)	(अम्हे) भणिस्सामो । (हम बोलेंगे ।)
द्वितीय पुरुष	(तुमं) भणिस्ससि। (तू बोलेगा । तुम बोलोगे ।)	(तुम्हे) भणिस्सह । (तुम सब बोलोगे ।)
तृतीय पुरुष	(सो) भणिस्सइ । (वह बोलेगा ।)	(ते) भणिस्संति । (वे बोलेंगे ।)

(२) भविष्यकाल के प्रत्यय

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	इहिमि, इहामि	इहिमो, इहामो
द्वितीय पुरुष	इहिसि	इहिह
तृतीय पुरुष	इहिइ	इहिंति

सर्वनामसहित भविष्यकाल के क्रियारूप

क्रियापद : पाल (पालना)

पुरुष	**एकवचन**	**अनेकवचन**
प्रथम पुरुष	(अहं) पालिहिमि । (अहं) पालिहामि । (मैं पालन करूँगा ।)	(अम्हे) पालिहिमो । (अम्हे) पालिहामो । (हम पालन करेंगे ।)
द्वितीय पुरुष	(तुमं) पालिहिसि । (तू पालन करेगा । तुम पालन करोगे ।)	(तुम्हे) पालिहिह । (तुम सब पालन करेंगे ।)
तृतीय पुरुष	(सा) पालिहिइ । (वह पालन करेगी ।)	(ते) पालिहिंति । (वे पालन करेंगी ।)

आज्ञार्थ (Imperative Mood)

आज्ञार्थ के प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	मु	मो
द्वितीय पुरुष	–, सु, हि	ह
तृतीय पुरुष	उ	अंतु

आज्ञार्थ

धातु (क्रियापद) : गच्छ (जाना)

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	गच्छामु	गच्छामो
द्वितीय पुरुष	गच्छ, गच्छसु, गच्छाहि	गच्छह
तृतीय पुरुष	गच्छउ	गच्छंतु

सर्वनामसहित आज्ञार्थ के क्रियारूप

क्रियापद : भक्ख (खाना)

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	(अहं) भक्खामु । (मैं खाऊँ ।)	(अम्हे) भक्खामो । (हम खायें ।)
द्वितीय पुरुष	(तुमं) भक्ख/भक्खसु/भक्खाहि । (तुम खाओ ।)	(तुम्हे) भक्खह । (तुम सब खाओ ।)
तृतीय पुरुष	(सो) भक्खउ । (वह खाये ।)	(ते) भक्खंतु । (वे खायें ।)

विध्यर्थ (Potential Mood)

विध्यर्थ के प्रत्यय

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	एज्जा, एज्जामि	एज्जाम
द्वितीय पुरुष	एज्जा, एज्जासि, एज्जाहि	एज्जाह
तृतीय पुरुष	ए, एज्जा	एज्जा

विध्यर्थ

धातु (क्रियापद) : गच्छ (जाना)

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	गच्छेज्जा, गच्छेज्जामि	गच्छेज्जाम
द्वितीय पुरुष	गच्छेज्जा, गच्छेज्जासि, गच्छेज्जाहि	गच्छेज्जाह
तृतीय पुरुष	गच्छे, गच्छेज्जा	गच्छेज्जा

सर्वनामसहित विध्यर्थ के क्रियारूप

क्रियापद : भक्ख (खाना)

पुरुष	एकवचन	अनेकवचन
प्रथम पुरुष	(अहं) भक्खेज्जा, भक्खेज्जामि । (मैं खाऊँ ।)	(अम्हे) भक्खेज्जाम । (हम खायें ।)
द्वितीय पुरुष	(तुमं) भक्खेज्जा/भक्खेज्जासि/भक्खेज्जाहि । (तुम खाओगे ।)	(तुम्हे) भक्खेज्जाह । (तुम सब खाओगे ।)
तृतीय पुरुष	(सो) भक्खे/भक्खेज्जा । (वह खाये ।)	(ते) भक्खेज्जा । (वे खायें ।)

****

पाठ १०
प्राकृत में अव्यय

अ) पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्यय

व्याकरण विवेचन :

इस कथा में पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्ययों का उपयोग किया गया है । आरोहिऊण, पासिऊण, चिंतिऊण, दट्ठूण, नाऊण, नमिऊण, आलोएऊण, ओयरित्ता, पासित्ता, गंतूण, नच्चा, चिंतेत्ताण - ये सब रूप पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्यय हैं ।

'पूर्वकालवाचक' का मतलब है - दो घटनाओं में से जो घटना पहले हुई है, उसका सूचन करनेवाला शब्द । 'धातुसाधित' का मतलब है - क्रियापद (verb) से बना हुआ । 'अव्यय' का मतलब है - जिस शब्द रूप में किसी भी तरह से बदल नहीं होता । अव्यय वाक्य में जैसे के तैसे उपयोग में लाये जाते हैं । उनके काल, विभक्ति, पुरुष, वचन नहीं होते ।

मराठी में 'करून, खाऊन, पाहून, जाऊन' आदि जो रूप दिखायी देते हैं वे पूर्णत: प्राकृत के प्रभाव से आये हैं । पू.का.धा.अ. दो प्रकार से बनते हैं । **१)** नियमित, **२)** अनियमित

१) नियमित पू.का.धा.अ. रूप :

I) अकारान्त धातुओं (verb) को 'इऊण' और इतर धातुओं को 'ऊण' प्रत्यय लगाकर ये रूप बनते हैं ।

II) सभी धातुओं को (क्रियापदों को) 'इत्ता, एत्ता, इत्ताणं, एत्ताणं, इत्तु और एत्तु' ये प्रत्यय लगते हैं ।

इसके कुछ **उदाहरण** -

पास (देखना) - पासिऊण, पासित्ता, पासेत्ता, पासित्ताणं, पासेत्ताणं, पासित्तु, पासेत्तु
कर (करना) - करिऊण, करित्ता, करेत्ता, करित्ताणं, करेत्ताणं, करित्तु, करेत्तु
गा (गाना) - गाऊण, गाइत्ता, गाएत्ता, गाइत्ताणं, गाएत्ताणं, गाइत्तु, गाएत्तु
ने (लेना) - नेऊण, नेइत्ता, नेएत्ता, नेइत्ताणं, नेएत्ताणं, नेइत्तु, नेएत्तु
हो (होना) - होऊण, होइत्ता, होएत्ता, होइत्ताणं, होएत्ताणं, होइत्तु, होएत्तु

२) अनियमित पू.का.धा.अ. रूप :

ये रूप संस्कृत शब्दों के साक्षात् (direct) प्राकृतीकरण से बनते हैं । अनियमित होने से भी इन्हें ध्यान में रखना पडता है क्योंकि प्राकृत आगम तथा कथाओं में ये बार बार पाये जाते हैं ।

इसके कुछ **उदाहरण –**

किच्चा (कृत्वा) - करके	नच्चा (ज्ञात्वा) - जानकर
सोच्चा (श्रुत्वा) - सुनकर	गहाय (गृहीत्वा) - ग्रहण करके
पेच्छिय (प्रेक्ष्य) - देखकर	पणम्म (प्रणम्य) - प्रणाम करके

****

ब) हेत्वर्थक धातुसाधित अव्यय

पिछले साल हमने पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्ययों का अर्थ और वाक्यों में प्रयोग देखें हैं । इसके अतिरिक्त प्राकृत में हेत्वर्थक धातुसाधित अव्यय भी होते हैं ।

पूर्वकालवाचक अव्ययों को अंग्रेजी में Gerund कहते हैं । इस साल हम हेत्वर्थक धातुसाधित अव्यय तथा उनके वाक्य में प्रयोग करने की पद्धति देखेंगे । हेत्वर्थक धातुसाधित अव्ययों को अंग्रेजी में infenitive कहते हैं । वाक्य में क्रिया का जो मुख्य हेतु और उद्दिष्ट हैं, उसे इस अव्यय के द्वारा सूचित किया जाता है । अगर वाक्य में दो क्रियाएँ हो और उन दोनों का कर्ता एकही हो, तो उद्दिष्टरूप क्रिया दर्शाने के लिए इस अव्यय का उपयोग किया जाता है ।

हेत्वर्थक का अर्थ है – हेतु दर्शानेवाला ।

धातुसाधित का अर्थ है – क्रिया से निष्पन्न ।

अव्यय का अर्थ है – जिस शब्द रूप में किसी भी तरह बदल नहीं होता ।

एक उदाहरण के द्वारा देखेंगे –

प्रथम वाक्य – दासी भद्दाए खेमकुसलं पुच्छइ ।

अर्थ – दासी भद्रा क्षेमकुशल पूछती है ।

दूसरा वाक्य – दासी आगया ।

अर्थ – दासी आ गई ।

दोनों वाक्य एकत्रित करके हम लिख सकते हैं कि –

भद्दाए खेमकुसलं पुच्छिउं दासी आगया ।

'पुच्छिउं' यह क्रियारूप धातुसाधित अव्यय है । इसका मतलब 'इस प्रयोजन से', 'इसके लिए', इन शब्दोंद्वारा व्यक्त किया जा सकता है ।

१) अकारान्त धातुओं को 'इउं' और अन्य धातुओं को हेत्वर्थक बनाने के लिए 'उं' प्रत्यय लगाये जाते हैं ।

गच्छ – गच्छिउं – जाने के लिए

पास – पासिउं – देखने के लिए

गा – गाउं – गाने के लिए

हो – होउं – होने के लिए

ठा – ठाउं – ठहरने के लिए

२) सब धातुओं के लिए हेत्वर्थक अव्यय बनाते हुए 'इत्तए' अथवा 'एत्तए' ये दो प्रत्यय भी लगाये जाते हैं । जैसे कि –

गच्छ – गच्छित्तए – जाने के लिए

गा – गाइत्तए – गाने के लिए

हो – होइत्तए – होने के लिए

३) संस्कृत में जिनको 'तुमन्त'रूप कहा जाता है उन्हीं से वर्णपरिवर्तन के नियमानुसार प्राकृत में हेत्वर्थक धातुसाधित अव्यय बनाये जाते हैं । जैसे कि –

लह – लद्धुं – पाने के लिए

सुण – सोउं – श्रवण करने के लिए

पास – दट्ठुं – देखने के लिए

कर – काउं – करने के लिए

गच्छ – गंतुं – जाने के लिए
हण – हंतुं – मारने के लिए, हनन करने के लिए

नमूने के तौरपर वाक्य –

१) सा जिणस्स पडिमं **पासिउं** देउलं पविट्ठा ।
अर्थ : वह जिन की प्रतिमा **देखने के लिए** देवालय में प्रविष्ट हुई ।

२) वसंतसमए कोइलो महुरसरेण **गाउं** लग्गो .
अर्थ : वसंतसमय में कोकिल मधुर स्वर से **गाने लगा** ।

३) दव्वं भूमीए **ठविउं** बंभणो एगंते गओ ।
अर्थ : द्रव्य भूमि में **रखने के लिए** ब्राह्मण एकान्त स्थल में गया ।

४) फलं **भक्खिउं** वाणरो रुक्खे आरूढो .
अर्थ : फल **भक्षण करने के लिए** वानर वृक्ष पर चढा ।

५) उवएसं **सोउं** सा मंदिरं गया ।
अर्थ : उपदेश **सुनने के लिए** वह मन्दिर गयी ।

६) रावणं **हंतुं** रामो लंकानगरं पविट्ठो ।
अर्थ : रावण को **मारने के लिए** राम लंकानगरी में प्रविष्ट हुआ ।

७) रयणाइं **विक्केउं** धणेसरो हट्टे पत्तो ।
अर्थ : रत्न **बिकने के लिए** धनेश्वर बाजार में पहुँचा ।

८) सो वि न सक्कइ चोरं गिण्हिउं ।
अर्थ : वह भी चोर को ग्रहण नहीं कर सका ।

स्वाध्याय

मुख्य पाठ में एवं वाक्यों में निहित हेत्वर्थक धातुसाधित अव्ययों के मूल क्रियापद पहचानिए । क्रियारूपों से सिद्ध हेत्वर्थक धातुसाधित अव्ययों के अर्थ लिखिए । 'रूप पहचानिए' इस प्रश्न में परीक्षा में हेत्वर्थक धातुसाधित अव्यय के रूप भी पूछे जाएँगे । वे इस प्रकार लिखने होंगे –

पासिउं – धातु 'पास' – हेत्वर्थक अव्यय
हंतुं – धातु 'हण' – हेत्वर्थक अव्यय
गाइत्तए – धातु 'गा' – हेत्वर्थक अव्यय

****

प्राकृत–गद्य–विभाग

पाठ ११
छत्त-परिक्खा

अत्थि एगम्मि नयरे चाउव्वेओ बंभणो । दुवे छत्ता तं विण्णवेंति – 'तुम्हे अम्हाणं वेयंतं वक्खाणह ।' बंभणो भणइ – 'अहं तुब्भं वेयंतं सिक्खावेमि । किंतु तत्थ विहाणमत्थि ।' तओ एगो छत्तो बीयं भणइ – 'तुमं आयरियं पुच्छ केरिसं तं विहाणं' ति । सो बंभणं पुच्छइ – 'भयवं, वयं तुब्भेहिंतो सोउं इच्छामो केरिसं तं विहाणं' ति ।

आयरिओ भणइ – 'तुमए काल-चउद्दसीए सेओ छालओ मारेयव्वो जत्थ न कोइ पासइ । तत्थ तस्स मंसं भुंजियव्वं । तओ वेयंत-सुणण-जोग्गो होसि ।' एगो छत्तो पडिभणइ – 'मए एयम्मि जत्तो किज्जइ । तुम्हे आसीसं देह ।' बंभणो भणइ – 'मम आसीसो तुज्झाणं कए अत्थि एव । किंतु तवं बुद्धीए परिक्खा अत्थि ।' छत्ता भणंति – 'अम्हे गच्छामो ।' आयरिओ आसीसं देइ भणइ य – 'तुम्हेसुं जो विहाणं सम्मं करेइ, सो मज्झ पट्टसीसो ।'

तओ एगो छत्तो सेय-छालगं गेण्हइ, काल-चउद्दसी-रत्तीए सुन्न-रत्थाए य गच्छइ । छगलयं मारेइ । तस्स मंसं भुंजइ, पडिनियत्तइ य । उवज्झाओ जाणइ – 'अजोग्गो, न किंचि परिणयमेयस्स' त्ति । न वक्खाणेइ तस्स वेय-रहस्सं ।

दुइओ वि तहेव सुन्न-रत्थाए गच्छइ । चिंतेइ य – 'एत्थ तारगा पेच्छंति ।' तओ देवउलं गच्छइ, चिंतेइ य – 'एत्थ देवो पेच्छइ ।' तओ सो सुन्नागारे गच्छइ, तत्थ वि चिंतेइ – ''एत्थ अहं, एसो छगलओ, अइसय-नाणी य पेच्छंति । 'जत्थ न कोइ पासइ तत्थ मारेयव्वो' त्ति उवज्झाय-वयणं । ता एस भावत्थो – 'एसो न मारेयव्वो' त्ति ।'' पडिगच्छइ उवज्झायस्स पाय-मूले । साहेइ तं जं तस्स परिणमियं ।

संतुट्ठो उवज्झाओ भणइ – 'तं बुद्धिमंतो, अज्जप्पहुइ मम पट्टसीसो तुमं' ति ।

(प्राकृत कथा के आरम्भ में जब 'अत्थि' यह क्रियापद आता है तब उसका अर्थ भूतकालवाचक होता है । उसका अर्थ है – 'था' ।)

छात्र-परीक्षा (अनुवाद)

एक नगर में चार वेद जाननेवाला (चतुर्वेदी) एक ब्राह्मण था । दो छात्रों ने उसको बिनती की – 'आप हमें वेदान्त का व्याख्यान कीजिए ।' ब्राह्मण ने कहा, 'मैं तुम्हें वेदान्त पढाऊँगा । किन्तु उसकी एक शर्त है ।' तब एक छात्र ने दूसरे से कहा, 'तुम आचार्य से पूछो कि वह शर्त कौनसी है ?' उसने ब्राह्मण से पूछा, 'भगवान, हम आपसे सुनना चाहते हैं कि वह शर्त कौनसी है ?'

आचार्य ने कहा, 'तुम्हे कृष्ण-चतुर्दशी को श्वेत छगल (बकरा) मारना होगा जहाँ कोई भी देख न सके । उधर ही उसके मांस का भोजन करना होगा । तभी तुम वेदान्त-श्रवण के योग्य हो जाओगे ।' पहले छात्र ने कहा, 'मैं इसमें प्रथम प्रयत्न करूँगा । आप मुझे आशीर्वाद दीजिए ।' ब्राह्मण ने कहा, 'मेरे आशीर्वाद तुम्हारे लिए हमेशा है । किन्तु इसमें तुम्हारे बुद्धि की परीक्षा है ।' छात्रों ने कहा, 'हम जाते हैं ।' आचार्य ने आशीर्वाद देकर बोला, 'तुम में से जो छात्र अच्छी तरह से शर्त निभायेगा, वह मेरा पट्टशिष्य होगा ।'

तब पहले छात्र ने श्वेत छगल लिया, कृष्ण चतुर्दशी की रात में शून्य (निर्जन) रास्ते पर गया । छगल को मारा । उसका मांस भक्षण किया और वापस आया । उपाध्याय ने जाना, 'यह अयोग्य है । इसको कुछ भी नहीं समझा है ।' (उपाध्याय ने) उसको वेद-रहस्य (वेदान्त) नहीं बताया ।

दूसरा भी उसी तरह निर्जन मार्ग पर गया । और सोचा, 'यहाँ तो तारकाएँ देख रही हैं ।' उसके पश्चात देवकुल (मन्दिर) में गया और सोचा, 'यहाँ तो देव देख रहा है ।' उसके अनन्तर वह शून्यघर में गया । वहाँ भी उसने सोचा, ''यहाँ तो मैं भी हूँ, यह छगल है और कोई अतिशय ज्ञानी सर्वज्ञ भी देख रहे हैं । 'जहाँ

कोई भी देख नहीं रहा है वहाँ छगल को मारो'–ऐसा उपाध्याय का वचन है । उसका भावार्थ यह हुआ कि, 'छगल को न मारो '।'' वह उपाध्याय के चरण में लौट गया । उसको जो भावार्थ समझा था, उसको उसने उपाध्याय से कहा ।

उपाध्याय सन्तुष्ट होकर बोले, 'तुम बुद्धिमान हो । आज से तुम मेरे पट्टशिष्य हो ।'

तात्पर्य : वेद के अन्तिम भाग को 'वेदान्त' कहते हैं । वेदान्त में आत्मासम्बन्धी विचार किया है । यह पवित्र शास्त्र होने के कारण वेदान्त की पढाई में हिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं है । यद्यपि समाज में पशुबलि की प्रथा थी फिर भी श्रेष्ठ आत्मज्ञान अहिंसा से ही प्राप्त होता है – यह इस कथा का तात्पर्य है ।

स्वाध्याय

प्रश्न १ : इस पाठ में निहित निम्नलिखित वर्तमानकालवाचक क्रियापदों की मूल क्रिया, पुरुष और वचन लिखिए ।

विण्णवेंति, सिक्खावेमि, भणइ, भणंति, गच्छामो, करेइ, गच्छइ, मारेइ, पडिनियत्तइ, जाणइ, पेच्छंति, चिंतेइ, पासइ, साहेइ, भुंजइ, पडिगच्छइ

उदाहरणार्थ :

विण्णवेंति – मूल क्रिया 'विण्णव', वर्तमानकाल, तृतीयपुरुष, बहुवचन

प्रश्न २ : निम्नलिखित आज्ञार्थ क्रियापदों के पुरुष और वचन लिखिए ।

वक्खाणह, देह

प्रश्न ३ : निम्नलिखित नामविभक्ति के रूप पहचानिए ।

नयरे, बंभणो, छत्ता, तारगा, देवउलं, वयणं, परिक्खा

उदाहरणार्थ :

नयरे – मूल शब्द 'नयर', अकारान्त नपुंसकलिंगी, सप्तमी एकवचन

****

पाठ १२
मूसग–वग्घो

महारिसिस्स गोयमस्स तवोवणे महातवो नाम कोइ मुणी निवासिओ । तेण कोइ मूसगो वायसेण अवहरिज्जमाणो दिट्ठो । तओ तेण कारुणिगेण सो वायसाओ मोइओ, अप्पणो कुडीरे संवड्ढिओ य । अह अन्नया कयाइ बिडालो तं मूसगं खाइउं उवधाविओ । तं विलोइऊण मुणिणा वुत्तं – ''मूसग, तुमं मज्जारो होहि'' त्ति । अह सो मुणिस्स पहावेण बिडालो संजाओ । परं साणं दट्ठूण पलाइओ । तओ मुणिणा परिजंपियं – ''जं कुक्कुराओ भीओ सि, तं तुमं कुक्कुरो भवाहि'' त्ति । अह सो मुणिवयणाओ सारमेओ भूओ । परं जया वग्घं पासिऊण दूरं निग्गओ, तया तेण मुणिणा सो वग्घो कओ ।

पच्छा तं मुणिं वग्घं च एगवासे निरूविऊण सव्वे जणा ''अणेण मुणिणा मूसगो वग्घत्तं उवणीओ'' त्ति सोवहासं परिजंपंति । एयं सोच्चा तेण वग्घेण विचिंतियं – ''जाव अयं मुणी जीवइ ताव इमं मे सरूव–अक्खाणयं अकित्तिकरं न विणासेज्जा ।'' अओ सो मूसग–वग्घो तं मुणिं हंतुं उवागओ । मुणिणा तं नाऊण ''पुणो वि मूसगो भवसु'' त्ति संलविऊण तहेव कओ ।

*****

इस कथा में भूतकालवाचक क्रियापदों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है । पूरी कथा ही भूतकाल में बतायी है । यद्यपि 'इत्था' और 'इंसु' ये दो प्रत्यय भूतकाल के होते हैं तथापि इस पाठ में अलग ही तरीके के भूतकाल के प्रत्यय दिये हुए हैं । उन्हें क.भू.धा.वि. याने कर्मणि भूतकालवाचक धातुसाधित विशेषण कहा जाता है । ये विशेषण क्रियापदों से बनते हैं लेकिन भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं । जैसे कि –

निवसिओ – रहता था ।	दिट्ठो – देखा ।
मोइओ – छुडाया ।	संवड्ढिओ – संवर्धन किया ।
उवधाविओ – धावा बोल दिया ।	पलाइओ – भागा ।
संजाओ – हो गया, बना ।	परिजंपियं – कहा ।
भूओ – हो गया ।	निग्गओ – निकल गया ।
कओ – किया, बनाया ।	उवागओ – पास आया ।

*****

मूषक–व्याघ्र (चूहा और बाघ) (अनुवाद)

महर्षि गौतम के तपोवन में 'महातप' नाम के कोई मुनि रति थे । एक दिन उन्होंने देखा कि, कोई एक वायस (कौआ) एक मूषक का (चूहे का) अपहरण कर रहा है (उठा कर ले जा रहा है ।) । तब उस दया तत्पर मुनि ने उस चूहे को कौअे से छुडाया और अपनी कुटी में चूहे का संवर्धन किया । एक बार एक बिल्ली (बिडाल) उस चूहे को खाने के लिए दौड पडी । वह देखकर मुनि ने कहा, 'हे मूषक, तुम मार्जार (बिल्ली) हो जाओ ।' अब शीघ्र ही मुनि के प्रभाव से वह चूहा 'बिल्ली' बन गया । लेकिन एक श्वान को (कुत्ते को) देखकर भागने लगा । तब मुनिने कहा, 'हे बिडाल, तुम श्वान से (कुक्कुर से) भयभीत हो रहे हो, इसलिए तुम श्वान ही हो जाओ ।' मुनिवचन से वह बिडाल 'श्वान' सारमेय बन गया । परन्तु दूर से एक व्याघ्र को (बाघ को) देखकर वह दूर भागा । तब मुनि ने उस श्वान को (तुरन्त) 'व्याघ्र' बनाया ।
उसके अनन्तर मुनि और व्याघ्र को एक कुटीर में देखकर सब लोग उपहापूर्वक बोलने लगे कि, 'इस मुनि ने मूषक को ही व्याघ्र बनाया है ।' लोगों के ये वचन सुनकर व्याघ्र ने विचार किया, 'जब तक यह मुनि जीवित है तब तक मेरा सच्चा स्वरूप प्रगट करनेवाला यह दुष्कीर्तिकर प्रवाद नहीं मिटेगा ।' इसी वजह उस मूषक–व्याघ्र ने मुनि को मारने के लिए उसपर धावा बोला । मुनि ने उसका इरादा जानकर झट से बोल दिया

कि, '(हे व्याघ्र), तुम पुनरपि 'मूषक' बन जाओ', यह कहकर मुनि ने वैसा ही किया (इस प्रकार मूषक फिर से 'मूषक' ही बन गया ।)

तात्पर्य : हर एक दयालु व्यक्ति मन से दूसरे का भला करना चाहता है । लेकिन किसी का भला करने से पहले यह भी सोचना चाहिए कि, वह उसके लायक है भी या नहीं । पात्रता देखे बिना की हुई दया बूमरँग की तरह खुदपर ही उलट जाती है । 'कृतघ्नता' बहुत ही बडा दुर्गुण है ।

स्वाध्याय

प्रश्न १ : निम्नलिखित नामविभक्ति के रूप पहचानिए ।

गोयमस्स, तवोवणे, वग्घं, वायसेण, कुक्कुराओ

प्रश्न २ : इस पाठ में आये हुए 'ऊण' प्रत्ययान्त पूर्वकालवाचक धातुसाधित अव्यय लिखिए ।

प्रश्न ३ : 'कुत्ता' और 'बिल्ली' इस अर्थ में प्रस्तुत पाठ में आये हुए दो-दो प्राकृत शब्द लिखिए ।

****

पाठ १३
भगवं महावीरो

अत्थि इहेव भारहे वासे कुंडिणउरे सिद्धत्थो नाम खत्तिय-गणाहिवई । तस्स तिसला नाम देवी । सा य सुसीला सुरूवा य । चेत्त-सुद्ध-तेरसमे सोहणे दिणे सुप्पहाए सा सव्व-गुण-संपन्न पुत्तं पसूया । जया एसो सुह-जीवो तिसलाए गब्भे आगओ, तओ सिद्धत्थ-महारायस्स विहवो पइ-दिणं वड्ढइ । अओ तस्स बालस्स वद्धमाणो त्ति नामं कयं ।अप्पणो वीरत्तेण सो त्ति पसिद्धो जाओ ।

बालत्तणाओ विविहं हिंसाइ-दुक्खं देखिऊण सो संसाराओ विरत्तो जाओ । तीसमे वरिसे महावीरेण मुणि-दिक्खा गहिया । तवं काउं सो वणे गओ । दुवालस-वरिस-पज्जंतं महावीर-मुणिणा उग्गं तवं कयं । तवग्गिणा सेस-कम्माइं डहिऊण भगवं महावीरो केवली होइ । सो इंदियाइं जयइ त्ति जिणो वि कहिओ ।

गोयमाइ-एक्कारस-माहण-सीसा भगवओ महावीरस्स गणहरा जाया । तस्स समोसरणं गामाणुगामं चलइ । सो सव्वाणं अद्धमागही-भासाए हिओवएसं करेइ -

'भो भव्व-जीवा, अप्पा कत्ता विकत्ता य । अप्पा मित्तो अमित्तो य । जीवो जहा सुहासुह-कम्मं कुणइ, तहा तस्स सुह-दुक्खं भुंजइ । जीवो सुकम्मेण च्चिय सेट्ठो होइ न जम्मेण । सव्वे पाणा सुहं इच्छंति न दुक्खं । सव्वेसिं जीवियं पियं । नाइवाएज्ज किंचण । अहिंसा परमो धम्मो । अओ भूएसु मेत्ती कायव्वा ।'

एवं सव्व-जीवाणं कल्लाण-करं धम्मं कहेंतो भगवं महावीरो पावाउरिं गच्छइ । तत्थ सो अस्सिण-अमावस्साए सुप्पहाए निव्वाणं गओ ।

एयं क्खु भगवओ महावीरस्स दिव्वं जीवणं । नमो नमो भगवओ महावीरस्स ।

स्वाध्याय

भगवान महावीर का चरित्र आपने कई बार सुना होगा । बहुत परिचित होने के कारण, शिक्षिका की सहायता से इस पाठ का हिन्दी में अनुवाद कीजिए । इसमें से कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्य परीक्षा में अनुवाद के लिए पूछे जा सकते हैं ।

****